बहुजन-कल्याण-माला—१६

रावण और उसकी लंका

[एक बुद्धिवादी विचार-धारा]

रामायण के ठीक अध्ययन कर्ता



द्रविड़ कजगम के प्रमुख नेता

पेरियार ई० वी० रामा स्वामी, मद्रास

बहुजन कल्याण प्रकाशन
३६०/१६३, मातादीन रोड, लखनऊ-२३

बहुजन-कल्याण-माला—१६

रावण और उसकी लंका

[एक बुद्धिवादी विचार-धारा]

लेखक

श्री चन्द्रिकाप्रसाद जिज्ञासु

प्राप्ति-स्थान—

हिन्दू-समाज-सुधार कार्यालय

सआदतगंज रोड, लखनऊ—२३

प्रकाशक

बहुजन कल्याण प्रकाशन

३६०/१९३ मातादीन रोड

लखनऊ

पूज्यचरण

गुरु बोधानंदजी महास्थविर

की पुण्य-स्मृति में

विषय-सूची

प्रथमावृत्ति, १९५९

मूल्य ५० न० पै०

मुद्रक

समाज-सेवा प्रेस,

सआदतगंज, लखनऊ

रावण और उसकी लंका

१. उपक्रम—रामलीलाओं का रावण

हमारे देश में, प्रति वर्ष, नगर-नगर, कस्बा-कस्बा और बाजार-बाजार में रामलीला होती है—कहीं दिन में उछल-कूद और दौड़-धूप के रूप में और कहीं रात में नाटक के रूप में। इन रामलीलाओं में, हिसाब लगाया गया है, देश का लगभग बीस करोड़ रुपया हरसाल ख़र्च हो जाता है। यदि यह धन शिक्षा पर ख़र्च हो तो प्रतिवर्ष कई विश्वविद्यालय खुल सकते हैं, और यदि इस धन से देश के होनहार विद्यार्थियों को विविध विषयों की विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिए विदेशों में भेजा जाय, तो प्रतिवर्ष एक लाख रोशन-दिमाग़ युवक तैयार होकर देश का अज्ञान और दरिद्रता दूर कर सकते हैं।

इन रामलीलाओं के लिए बाजारों में धर्मादे और बंधान बँधे हैं, कहीं घर-घर चंदा होता है और कहीं-कहीं रियासतें भी लगी हैं। प्रायः रामलीला-कमेटियाँ क़ायम हैं जिनके प्रधान और मन्त्री या तो बड़े आदमी होते हैं या पंडित महराज, जो धार्मिक दबाव डालकर जनता से चंदा उगाहते हैं। रामलीला करानेवाले तो निश्चय ही कोई पंडितजी ही होते हैं जो रामायण की पोथी हाथ में लिये पात्रों से ऐक्टिंग कराया करते हैं। पात्रों में राम-लक्ष्मण-सीता आदि स्वरूप ब्राह्मणों के लड़कों के बनाये जाते हैं, क्योंकि उनकी आरती-पूजा-प्रणाम होता है। दर्शकों में ब्राह्मण भी होते हैं, अतः इस मर्यादा की रक्षा के लिए कि ब्राह्मण अब्राह्मण को प्रणाम कैसे करेगा, राम आदि के स्वरूप गैर-ब्राह्मणों के लड़कों के नहीं बनाये जाते। दूसरे रूपों में प्रायः सभी जातियों के लोग होते हैं, खासकर राक्षस तो प्रायः मूल-निवासी दबी-पिछड़ी जातियों के लोग ही बनाये जाते हैं।

राम-लक्ष्मण-सीता-भरत-शत्रुहन आदि के कपड़े पीले गोटे-कामदानी के होते हैं, और चेहरों पर पाउडर व अभ्रक मलकर सितारों से स्वरूप भरकर क्रोट-मुकुट पहनाया जाता है। राम की वानर-सेना को लाल कपड़े पहनाये जाते हैं तथा रावण और उसके वंशधरों को काले कपड़े पहनाकर उनके मुखों पर बड़े-बड़े दाँतों और सींगोंवाले विकरालमुखी चेहरे लगाये जाते हैं। रावण, कुंभकरन और मेघनाद के प्रायः दस-दस गज़ से भी ऊँचे, बाँस की खपाचों पर काला काग़ज़ मढ़कर पुतले बनाये जाते हैं, जिनमें रावण के दस सिर होते हैं जिनके ऊपर एक गधे का सिर भी होता है। इन पुतलों के भीतर सूखा तृण-पतावर आदि भर देते हैं, इनकी छाती पर आतशबाजी बाँधी जाती है, और सिर में हवाइयाँ लगा देते हैं। पहले इन पुतलों को राम-लक्ष्मण तीरों से छेदते हैं और अंत में ये फूँक दिये जाते हैं, और आग लगते ही हवाइयों के ज़ोर से रावण-कुंभकरन के शिर उड़ जाते हैं। फूकते समय 'रामचंद्र की जय' और 'रावण की क्षय' आदि नारों के साथ इतना हंगामा और शोरगुल मचता है कि कान पड़ी बात सुनाई नहीं देती।

इस रामलीला के द्वारा दर्शकों पर यह प्रभाव डाला जाता है कि रावण बड़ा पापी थाँ, वह वेद-पुराणादि में वर्णित धर्म को नहीं मानता था, ब्राह्मणों और देवताओं को त्रास देता था, ब्राह्मणों को यज्ञ, जप, होम, कथा-पुराणादि नहीं करने देता था, ब्रह्मभोज और श्राद्धभोज आदि बंद कर रखे थे। अतः देवता और ब्राह्मणों ने मिलकर अपने परम हितैषी विष्णु भगवान् से स्तुति की और विष्णु ने राम का अवतार लेकर रावण को वंश-सहित मारकर उसका समूल नाश कर दिया। मतलब यह कि यह रामलीला प्रतिवर्ष एक धार्मिक कृत्य के नाम से होती है, और इसके प्रेरक, उत्तेजक, अग्रणी, संचालक, कार्य-कर्ता, आचार्य और पात्र प्रायः ब्राह्मण ही होते हैं और जब रामलीला बड़ी शान से सफलतापूर्वक संपन्न हो जाती है तो ब्राह्मण लोग इसे अपनी धार्मिक विजय मानते हैं।

हिंदू-गणना के अनुसार रावण त्रेता-युग के अंत में मारा गया था। तब से आठ लाख चौंसठ हजार साल का द्वापर युग बीत गया और

उसके बाद कलियुग के भी प्राय: पाँच हजार वर्ष बीत गये, लेकिन तब से आज तक हरसाल रावण का पुतला फूँककर जयंती मनाई जाती है।

हालाँकि तब से अब तक इन लाखों-लाखों वर्षों में संसार में न मालूम कितना परिवर्तन हो गया—धरती बदल गई, आकाश बदल गया, समुद्र बदल गये, पहाड़ बदल गये, रेगिस्तान बदल गये, जंगल बदल गये, कितने ही देश और नगर उजाड़ होकर मिट्टी में मिल गये, कितने ही सुनसान जंगल नगर बन गये, कितने ही साम्राज्य आये और गये, कितनी हुकूमतें बनीं और बिगड़ीं, कितने विजेता काल के गाल में समा गये, कितना महान् सामाजिक परिवर्तन हुआ किंतु रावण के प्रति ब्राह्मणों को जो कोप हुआ था, जो घृणा हुई थी और जो विद्वेष की आग उनके हृदय में प्रज्वलित हुई थी, वह अबतक प्रशमित नहीं हुई। उल्टे उसे उत्तेजन देने के लिए नितनई काव्य-कला और नाटक-लीला का सृजन करके उसके संप्रदर्शन के लिए प्रतिवर्ष नये-नये तरीकों से करोड़ों-करोड़ों रुपया पानी की तरह बहाया जाता है!

कहा जाता है कि सज्जन पुरुषों का रोष क्षणिक और तात्कालिक होता है, घृणा और विद्वेष की आग से वे अपने हृदयों को निरंतर जलाया नहीं करते। क्षमाशीलता सभ्य और सुसंस्कृत मानवों का स्वाभाविक सद्गुण है। फिर जब अपराधी को प्राणदंड देकर वंश-सहित उसका समूल नाश कर दिया गया हो, तब तो प्रतिशोध की भावना भी भस्मीभूत हो जाना चाहिए, और क्रोध के कारणों को भूल जाना चाहिए। किंतु इसके विपरीत जब देखा जाता हो कि उसे उत्तेजित करने का असामान्य सामूहिक प्रयत्न हो रहा है और दूसरी ओर उसके विरोध में शत्रुता-पूर्ण आंदोलन चल रहा है, तो प्रत्येक बुद्धिवादी के लिए विचार करने का यह एक विषय बन जाता है!

अतएव, इस छोटी-सी पुस्तक में, इस सीमातीत घृणा, इस असीम विद्वेष एवं इस युगांतकारी कोप के कारणों पर प्रकाश डालने का प्रयास किया गया है। आशा है, बुद्धिमान् पाठक, निष्पक्ष-भाव से पढ़ने की कृपा करेंगे।

२. रामायणों में वर्णित रावण

वाल्मीकि एवं अन्य संस्कृत-ग्रन्थों में लंकेश्वर रावण का जो वृत्तान्त मिलता है, वह संक्षेप में इस प्रकार है—

विश्रवा मुनि के औरस और कैकसी के गर्भ से रावण, कुंभकरन और विभीषण तीनो भाइयों का जन्म हुआ। उस समय लंका में देवताओं के खज़ांची अलकापुरी के यक्षराज कुबेर राज्य करते थे। कुबेर कैकसी की सौत के पुत्र थे। उनके ऐश्वर्य से ईर्षान्वित होकर कैकसी ने अपने तीनो पुत्रों को तपस्या करने के लिए उत्तेजित किया। अतः रावण अपने दोनो भाइयों के साथ तप करने लगा। उसकी कठोर तपस्या से प्रसन्न होकर ब्रह्मा उसे वर देने आये, तो रावण ने अमर होने की प्रार्थना की, किन्तु ब्रह्मा उसे अमर बनाने को राजी नहीं हुए, तब रावण ने क्षुद्र-प्राण नर-वानरों को छोड़कर शेष सबसे अजेय और अबध्य होने का वर माँगा और ब्रह्मा 'तथास्तु' कहकर अंतर्द्धान हो गये।

फिर रावण अनन्य भक्ति से शिवार्चन करने लगा और आशुतोष शंकरजी ने उसे अपरिमित बल देकर देवताओं से अजेय बना दिया। इस प्रकार बल प्राप्त करके रावण लंका में आया और माता की आज्ञानुसार कुबेर से घोर युद्ध करके उसे लंका से भगा दिया और उसका पुष्पक रथ भी छीन लिया तथा लंका में अपना राज्य कायम करके लंकेश्वर बन गया। इसके बाद दानवराज मय ने अपनी महासुन्दरी कन्या मन्दोदरी के साथ उसका विवाह कर दिया। मंदोदरी के गर्भ से मेघनाद, अक्षयकुमार आदि उसके बहुत-से पुत्रों ने जन्म लिया। फिर रावण दिग्विजय के लिए निकला और पृथ्वी के प्रायः सभी राजाओं को पराजित किया, केवल वानरराज बालि और कार्तवीर्य अर्जुन से उसने हार मानी, और पाताल में बलि के राज्य में वह अपमानित हुआ। फिर उसने त्रिदिव (स्वर्ग) पर धावा किया और सब देवताओं को मार भगाया। इस युद्ध में मेघनाद ने अपने युद्ध-कौशल से देवराज इन्द्र को बंदी कर लिया, इसी से उसे 'इंद्रजित' नाम प्राप्त हुआ। इस युद्ध में रावण को अपरिमित देव-

ऐश्वर्य और महासुन्दरी देव-कन्याओं व देवांगनाओं की प्राप्ति हुई, जिन्हें लेकर वह लंका आया। इसके बाद ब्रह्मा ने लंका में उपस्थित होकर इंद्रजित को वरदान से प्रसन्न करके देवराज इंद्र को मुक्त कराया।

रावण वैदिक देवों, वैदिक धर्म और वैदिक यज्ञों का घोर विरोधी था। वह देवताओं और याज्ञिक ऋषियों व ब्राह्मणों को मारता और यज्ञों को भंग कर देता था। तुलसीदास के शब्दों में रावण ने अपने साथियों को आदेश दिया था—

सुनहु सकल रजनीचर जूथा, हमरे बैरी बिबुध-बरूथा
ते सनमुख नहिं करहिं लराई, देखि सबल रिपु जाहिं पराई
तिन्हकर मरन एक विधि होई, कहउँ बुझाइ सुनहु सब कोई
द्विजभोजन, मख, होम, सराधा, सबकै जाइ करौ तुम बाधा

और इस आदेश का नतीजा यह हुआ कि

शुभ आचरन कतहुँ नहिं होई, देव बिप्र गुरु मान न कोई
नहिं हरिभगति, यज्ञ, जप, दाना, सपनेहु सुनिय न बेद-पुराना
जेहि-जेहि देस देव-द्विज पावहिं, नगर गाउं पुर आगि लगावहिं
भा भ्रष्टाचारा, सब संसारा, धर्म सुनिय नहिं काना।
तेहि बहु विधि त्रासै, देस निकासै, जो कह बेद-पुराना ।।
बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्हके पापन्ह कवनि मिति ।।

वैदिक देवों में रावण का ऐसा आतंक छाया हुआ था कि

चलत दसानन डोलति धरनी, गर्जत गर्भ स्रवत सुर-रवनी
रावन आवत सुनेउ सकोहा, देवन्ह तके मेरु-गिरि-खोहा
रवि-ससि पवन वरुन तनधारी, अगिनि काल जम सब अधिकारी
ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी, दसमुख बसवर्ती नर-नारी

एक बार स्वर्ग की सुप्रसिद्ध अप्सरा रम्भा कुबेर-पुत्र नलकूबर के पास गई। यह सुन रावण भी वहाँ पहुँच गया और रंभा को बलपूर्वक पकड़कर समालिंगन किया। बाद में रंभा नलकूबर के पास पहुँची और सारी बात बताकर रोई। इस पर कातर हो नलकूबर ने रावण को

शाप दिया कि आज से वह किसी भी स्त्री के साथ यदि उसकी अनिच्छा होने पर बलात् रमण करेगा, तो मृत्यु को प्राप्त होगा।

एक बार रावण के आत्मीय दैत्यों ने उद्दंडता पूर्वक उसके विरुद्ध सिर उठाया, तब रावण को उनके साथ युद्ध करके उनका दमन करना पड़ा। इस संघर्ष में भ्रम से अपनी बहन के पति विद्युज्जिह्व को उसने मार डाला। इस तरह एकमात्र बहन के विधवा हो जाने पर रावण ने खरदूषण के नायकत्व में १४ हजार वीरों की सेना देकर उसे दंडक वन की रानी बना दिया।

जब अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र रामचन्द्रजी पिता के सत्य के पालन के लिए अपनी स्त्री के साथ वनवास करते हुए पंचवटी में कुटी बनाकर वास कर रहे थे, उस समय शूर्पणखा राम की प्रणयाकांक्षिनी हो सीता को खा जाने के लिए उद्यत हो गई, तो राम के संकेत पर उनके छोटे भाई लक्ष्मण ने उसके नाक-कान काट दिये। यह देखकर सीता खिलखिलाकर हँसीं। इससे खिन्न होकर विरूप शूर्पणखा अपने बड़े भाई रावण के पास लंका गई और सीता के रूपलावण्य का वर्णन करके उसे उसके अपहरण करने को उत्तेजित किया। अतः रावण वहाँ आया, सीता को उसने देखा और घात लगाये रहा। एक दिन कुटी में सीता को अकेली पाकर उसका अपहरण करके लंका की ओर रवाना हुआ। रास्ते में जटायू ने गतिरोध करने की चेष्टा की किंतु रावण ने शस्त्र-प्रहार करके उसे मृतप्राय कर दिया और सीता को लंका ले गया। किंतु नलकूबर के शाप के कारण सीता के साथ बलात्कार करने का रावण को साहस न हुआ।

राम सीता के वियोग में वन में बहुत व्याकुल रहे। अंत में कपिराज सुग्रीव से मित्रता करके उसकी अपार वानर-सेना के साथ लंका पहुँच गये। उस समय विभीषण ने सीता को लौटाकर राम के साथ मित्रता कर लेने के लिए भाई को बहुत समझाया, किंतु अहंकारी रावण ने विभीषण का परामर्श नहीं माना और उसे राज्य से निकाल दिया। तब विभीषण राम से मिल गया, और उसके द्वारा सारे गुप्त भेद प्रकट हो जाने पर रावण युद्ध में नर-वानरों के हाथों वंश-सहित मारा गया।

३. वाल्मीकि के अनुसार रावण और उसकी लंका

तुलसी-रामायण का देश में सबसे अधिक प्रचार है। उसमें लिखा है कि "दस सिर ताहि बीस भुजदंडा, रावन नाम वीर बरिवंडा" और रामलीलाओं में ऐसा ही दिखाया भी जाता है, इसलिए आम जनता की धारणा है कि रावण के दस सिर और बीस हाथ रहे होंगे। किंतु वाल्मीकि रामायण इसका समर्थन नहीं करती कि रावण के दस सिर, बीस आँखें, बीस हाथ और सबके ऊपर गधे का सिर था, या रावण के आत्मीय स्वजनों के हिंसक पशुओं के समान बड़े-बड़े दाँत और सिर पर बैलों-जैसी सींगें थीं तथा वे नरभक्षी थे—जीवित मनुष्यों को व्याघ्र आदि पशुओं की तरह मारकर कच्चा ही खा जाते थे और हर समय मदिरा पिये उन्मत्त घूमा करते थे। वाल्मीकि से हमें पता चलता है कि रावण परम नीतिज्ञ, विद्वान, सभ्य और सुसंस्कृत मनुष्य था, और उसकी लंकापुरी सुसभ्य मानवों की नगरी थी। सीता की खोज करते हुए हनुमान जिस समय लंका पहुँचे, तो उन्होंने जो देखा, उसका वर्णन वाल्मीकि के अनुसार इस प्रकार है—

प्रदोषकाले हनुमांस्तूर्णमुत्प्लुत्य वीर्यवान्।
प्रविवेश पुरीं रम्यां सुविभक्त महापथाम्॥
प्रासाद मालाविततां स्तभैः कांचन राजतैः।
शातकुम्भमयैर्जालैर्गंधर्व नगरोपमाम्॥
सप्त भौमाष्ट भौमैश्च सददर्श महापुरीम्।
तलैः स्फटिक संकीर्णौः कार्तस्वर विभूषितैः॥

शंखप्रभं क्षीरमृणालवर्ण उद्गच्छमान व्यवभासमानम्।
ददर्श चन्द्रं स कपिप्रवीरः पोप्लूयमानं सरसीव हंसम्॥

तां सविद्युद्घनाकीर्णज्योतिर्मार्गनिषेविताम्।
वज्रांकुशनिकाशैश्च वज्रजालविभूषितैः।
गृहमुख्यैः पुरी रम्या बभासे द्यौरिवाम्बुदैः॥
प्रजज्वाल तदा लंका रक्षोगणगृहैः शुभैः।
सिताभ्रसदृशैश्चित्रैः पद्मस्वस्तिकसंस्थितैः॥

अर्थ—"सायंकाल में प्राचीर फाँदकर वीर्यवान् हनुमान् ने विशाल सड़कों में बँटी हुई उस रमणीक लंकापुरी में प्रवेश किया (तो देखा कि)"

"लंका की सड़कों पर बड़े-बड़े महलों की कतारें बिछी हुई थीं जिनमें सोनहले खंभे थे। इन महलों में बड़ी-बड़ी सोनहली खिड़कियाँ थीं। इन महलों के कारण लंका गंधर्वों की महानगरी प्रतीत होती थी।"

"इस महानगरी में हनुमान् ने सात-सात आठ-आठ मंज़िलों की इमारतें देखीं, जिनके फर्श पारदर्शी चमकदार स्फटिक पत्थरों से जड़े हुए शोभायमान थे।"

"उस समय आकाश में दूध, श्वेत कमल और शंख के रंग-जैसा चन्द्रमा उदय होकर ऊपर उठ रहा था, जिसके प्रकाश में लंका घनी बिजली की चमक से जगमगा रही थी।"

"हनुमान् ने देखा लंका के कितने ही मकान हीरे की आकृति के अर्थात् अंडाकार गोल थे, कुछ अंकुश की आकृति के थे, जिनमें हीरों के जड़ाऊ झरोखे थे।"

"अंकुश की आकृतिवाले मुख्य-मुख्य घरों से लंका उसी प्रकार सुशोभित थी जिस तरह मेघों से आकाश सुशोभित होता है। इन उजले और बड़े-बड़े भवनों में कुछ कमल के आकार के थे और कुछ स्वस्तिक के आकार के, जो अपनी सुन्दरता से लंकापुरी को जगमगा रहे थे।"

यह वर्णन वाल्मीकि का है। तुलसीदासजी को भी लंकापुरी की प्रशंसा ही करनी पड़ी है। आपने लिखा है—

गिरि पर चढ़ि लंका कपि देखी, कहि न जाय अति दुर्ग विशेखी
अति उतङ्ग जलनिधि चहुँ पासा, कनक-कोट पर परम प्रकासा
कनक-कोट विचित्र मनि - कृत सुन्दरायतना घना।
चौहट्ट हाट, सुघट्ट बीथी, चारु पुर बहुविधि बना॥

लंकापुरी केवल सोने की विशाल प्राचीर (शहरपनाह) से घिरी, बड़े-बड़े सुवर्ण-मय रत्नजटित खंभों से शोभायमान महलों, चौहट्टी विशाल सड़कों और सुंदर गलियों से ही शोभायमान नहीं थी, उसमें आजकल की सभ्यता-पूर्ण रुचि के अनुसार बड़े-बड़े पार्क, उद्यान और

उपवन भी थे। सड़कों पर रोशनी की पूरी व्यवस्था थी। रात में घर रोशनी से जगमगा उठते थे। सड़कों पर जगह-जगह कृत्रिम पहाड़ बने थे जिनके बीच-बीच में पक्के तालाब थे, स्थान-स्थान पर बड़े-बड़े चिड़ियाघर और ज़िंदा अजायबघर भी थे। वाल्मीकि लिखते हैं—

स तस्मिन्नचले तिष्ठन्वनान्युपवनानि च।
स नगाग्रे च तां लंकां ददर्श पवनात्मजः।।
शाद्वलानि च नीलानि गन्धवन्तिय वनानि च।
पुष्पवन्ति च मध्येन जगाम नगवन्ति च।।
शैलांश्च तरुभिश्छन्नान्वनराजीश्च पुष्पिताः।
अभिचक्राम तेजस्वी हनुमान्प्लवगर्षभः।।
सरलान्कर्णिकारांश्च खर्जूरांश्च सुपुष्पितान्।
प्रियालान्मुचुलिन्दांश्च कुटजान्केतकानपि।।
प्रियङ्गून्गंध पूर्णांश्च नीपान्सप्तच्छदांस्तथा।
असनान्कोविदारांश्च करबीरांश्च पुष्पितान्।।
पुष्पभारनिबद्धांश्च तथा मुकुलितानपि।
पादपान्विहगाकीर्णान्पवनाधूतमस्तकान्।।
सन्तताविन्विधैर्वृक्षैः सर्वर्तुफलपुष्पितैः।
उद्यानानि च रम्याणि ददर्श कपिकुञ्जरः।।

अर्थ—"तब पवन-पुत्र हनुमान् ने उस पर्वत-शिखर पर बसी हुई लंका महानगरी के वनों और उपवनों को देखा।"

"उन्होंने हरी-हरी घास और सुगन्धित एवं सुन्दर वृक्षों से शोभायमान मधु से पूर्ण वनों एवं वृक्षों से ढके हुए पर्वतों से होकर अपने जाने का रास्ता तय किया।"

"हनुमान् को लंका के इन वनों में सीधे और ऊँचे देवदारु और कर्णिकार तथा भली प्रकार फूले और फले हुए खजूर, चिरौंजी, खिरनी, महुआ, केतकी, प्रियंगु, कदम्ब, शतावरी, असन, कोविदार और करबीर के वृक्ष देख पड़े।"

"इन वृक्षों में बहुतेरे फूलों से लदे हुए थे और बहुतों में कलियाँ

लगी हुई थीं। इन पर पक्षियों के दल के दल बैठे हुए थे और इनकी फुनगियाँ हवा से हिल रही थीं।"

"हनुमान् ने अनेक प्रकार के ऐसे भी वृक्ष देखे जो बारहो मास फलते-फूलते थे। उन्होंने अनेक सुन्दर बागीचे भी देखे।"

गोसाई तुलसीदासजी ने भी लंकापुरी की सुन्दरता को सराहा और अपने महाकाव्य में लिखा है—

भोगावति जसि अहिकुल वासा, अमरावति जसि सक्र-निवासा
तिन्ह ते अधिक रम्य अति बंका, जगविख्यात नाम तेहि लंका
खाई सिंधु गंभीर अति, चारिहु दिसि फिरि आव।
कनक-कोट मणिखचित दृढ़, बरनि न जाइ बनाव॥
वन बाग उपवन बाटिका सर कूप वापी सोहहीं।
नर-नाग-सुर-गन्धर्व कन्या, रूप मुनिमन मोहहीं॥
कहुं माल देह विसाल सैल समान अतिबल गर्जहीं।
नाना अखारेन्ह भिरहिं बहु विधि, एक एकन्ह तर्जहीं॥

यह तो हुआ लंकापुरी का वर्णन। अब ज़रा इस पुरी के स्वामी के रूप का भी वर्णन पढ़िए। सीता की खोज में हनुमान् जब रावण के महल में शयनगृह में पहुँचे तो उन्होंने सोते हुए रावण को देखा—

काञ्चनांगदनद्धौ च ददर्श स महात्मनः।
विक्षिप्तौ राक्षसेन्द्रस्य भुजाविन्द्रध्वजोपमौ॥
ऐरावतविषाणग्रेरापीडनकृतव्रणौ।
बज्रोल्लिखितपीनांसौ विष्णुचक्रपरिक्षतौ॥
पीनौ समसुजातांसौ संहतौ बलसंयतौ।
सुलक्षणनखाङ्गुष्ठौ स्वंगुलीतललक्षितौ॥
सह तौ परिघाकारौ वृत्तौ करिकरोपमौ।
विक्षिप्तौ शयने शुभ्रे पञ्चशीर्षाविवोरगौ॥
शशक्षतकल्पेन सुशीतेन सुगन्धिना।
चन्दनेन परार्ध्येन स्वनुलिप्तौ स्वलंवृतौ॥

ताभ्यां स परिपूर्णाभ्यां भुजाभ्यां राक्षसेश्वरः ।
शुशुभेऽचलसंकाशः श्रृंगाभ्यामिव मंदरः ।।
मुक्तामणिविचित्रेण काञ्चनेन विराजितम् ।
मुकुटेनापवृत्तेन कुण्डलोज्ज्वलिताननम् ।।
रक्तचन्दनदिग्धेन तथा हारेण शोभिना ।
पीनायतविशालेन वक्षसाभिविराजितम् ।।
पाण्डुरेणापविद्धेन क्षौमेण क्षतजेतक्षणम् ।
महार्हेण सुसंवीतं पीनेनोत्तमवाससा ।।

अर्थ—"राक्षसेन्द्र रावण की दोनो भुजाएँ सोने के बाजूबंदों से सुशोभित थीं, जिन्हें फैलाये हुए वह सो रहे थे और वे इन्द्रध्वज की तरह प्रतीत होती थीं।"

"उनकी दोनो भुजाओं पर ऐरावत के दाँतों के आघात के चिन्ह दिखाई देते थे। उनके कन्धों पर वज्र के आघात के चिन्ह मौजूद थे और दोनो भुजाओं पर विष्णु के चक्र के आघात के चिन्ह भी दिखाई दे रहे थे।"

"उनके शरीर के अनुरूप ही उनकी दोनो भुजाएँ लम्बी और मोटी थीं। उनकी अँगुलियों और अँगूठों के नखों में सुलक्षणता थी, जिनमें वह सुन्दर अँगूठियाँ पहने हुए थे।"

"उनकी दोनो भुजाएँ मोटी और परिधि के आकार की थीं, जिनमें हाथी की सूँड़ की तरह उतार-चढ़ाव था और जो पलँग पर फैले हुए पाँच सिरवाले सर्पों की भाँति दिखाई देती थीं।"

"उनकी दोनो भुजाओं में खरहे के रक्त की तरह लाल-लाल सुगन्धित शीतल रक्त चन्दन तथा अन्य सुगन्धित पदार्थ पुते हुए थे।"

"अपनी दोनो भुजाओं से राक्षसेश्वर रावण दो शिखरोंवाले मंदराचल की तरह सुशोभित हो रहे थे।"

"उनका मुख दोनो कुण्डलों एवं उस स्वर्ण-मुकुट के कारण, जो विचित्र प्रकार के मोतियों और मणियों से जड़ा हुआ और शयनावस्था में अपने स्थान से कुछ खिसक गया था, बड़ा सुन्दर लग रहा था।"

"उसकी चौड़ी और मांसल छाती रक्तचन्दन और हार से सुशोभित बड़ी ही सुन्दर लगती थी।"

"वह सफेद रंग की रेशमी धोती पहने और बहुत बढ़िया पीले रंग का दुपट्टा ओढ़े हुए थे।" इत्यादि।

यह था लंकेश्वर रावण का देवताओं को लजानेवाला और कामिनियों को विमोहित करनेवाला स्वरूप। अब ज़रा उनके सैनिक-सिपाहियों के भी आकार-प्रकार और स्वरूप को वाल्मीकि से सुन लीजिए—

नाति स्थूलान्नाति कृशान्नाति दीर्घान्न ह्रस्वकान्।
नाति गौरान्नाति कृष्णान् न कुब्जान्नतु वामनान्॥

अर्थ—रावण के सैनिक न बहुत मोटे थे न बहुत दुबले, न बहुत लम्बे थे न बहुत ठिंगने, न बहुत गोरे थे न काले, और न कुबड़े थे न बौने। अर्थात् वे मध्य आकृति के सुगठित शरीरवाले जवान थे। जैसे किसी सुरुचिसंपन्न सेनापति के छबीले सिपाही हुआ करते हैं।

इस वर्णन पर टीका-टिप्पणी अनावश्यक है। इससे रावण और उसके आदमियों के संबंध में फैली हुई कुत्सित, बीभत्स, घृणित और विद्वेष-पूर्ण धारणा अपने-आप उसी तरह निर्मूल हो जाती है जैसे गदहे के सिर से सींग।

४. आर्यसमाज की खोज में रावण

पिछले पन्नों में वाल्मीकि आदि के वर्णन पढ़कर पाठकों ने मालूम किया होगा कि लंकेश्वर रावण ज्ञानी, तपस्वी, धर्मज्ञ, वीर, बलवान, सुन्दर, सुरुचिसंपन्न, सभ्य और सुसंकृत सम्राट था। अब, इस अध्याय में, एक आर्यसमाजी पंडित की खोज के अनुसार रावण के पांडित्य और प्रतिभा का आश्चर्यजनक वृत्तांत दिया जाता है।

'अक्षर-विज्ञान' के लेखक, साहित्यभूषण, पंडितप्रवर रघुनंदन शर्मा का "वैदिक संपत्ति" नामक ग्रन्थ महर्षि दयानंद के सत्यार्थप्रकाश की कोटि का ग्रन्थ है। इसमें इतिहास और पुरातत्त्व-संबंधी खोजों का मंथन करके महर्षि दयानंद द्वारा प्रतिपादित आर्य-सिद्धांतों की पुष्टि की गई

है, इसीलिए, यह ग्रन्थ गुरुकुलों की उच्च कक्षाओं में पढ़ाया जाता है। इस ग्रन्थ में लंकेश्वर रावण एवं उनकी परंपरा के संबंध में जो मनोरंजक और कौतूहल-पूर्ण वृत्तान्त लिखा है, उसका आभास निम्नलिखित उद्धरणों से मिल जायगा।

शर्माजी का कहना है कि "ऋषि पुलस्त्य धर्म-प्रचार के लिए आस्ट्रेलिया गये थे, पर वहाँ के राजा तृणबिंदु की सुंदरी पुत्री से उनका विवाह हो गया। उसी से 'विश्रवा' की उत्पत्ति हुई, जोकि रावण के पिता थे।" (यानी यह कि रावण ऋषि-सन्तान था !)

फिर आप लिखते हैं—"आस्ट्रेलिया से लंका होते हुए विदेशियों का एक दल भारत आकर मद्रास-प्रान्त में बस गया था। इस आगत दल का नेता रावण था। यह पंडित और योधा होते हुए दुराचारी था।...... पर रामचन्द्र द्वारा युद्ध में मारे जाने के कारण उसकी राज्यश्री उसके और उसके वंशजों से सदा के लिए नष्ट हो गई।........राज्य और ऐश्वर्य खोकर बचे हुए अनार्य अपने को 'हिंदू' कहने लगे और ऋषि पुलस्त्य तथा रावण का सिलसिला जोड़कर कुछ लोग ब्राह्मण भी बन गये तथा अपने को आर्य सिद्ध करने के लिए आर्य-जाति के मूल पुरुष वैवस्वत मनु को भी द्राविड़ बनाया।" यथा—

> योऽसौ सत्यव्रतो नाम राजर्षि द्रविड़ेश्वरः।
> स वै विवस्वतः पुत्रो मनुरासीतिति श्रुतम्॥ (पृ० ४५६)

"रावण ने अपने द्राविड़ी सिद्धांतों को आर्यों में प्रचलित करके दोनो जातियों को एक करने का भी प्रयत्न किया। उसने वेदों का भाष्य किया और उस भाष्य में वेदों का अभिप्राय बदलकर आसुरी सिद्धांतों का प्रक्षेप किया। किंतु अब वह भाष्य रावण के नाम से नहीं मिलता। रावण के नाम से एक भाष्य का कुछ अंश मिलता है।...... द्राविड़ों में एक कृष्णवेद अब तक अवश्य चल रहा है, जिसमें प्राचीन रावण के भाष्य का अंश प्रतीत होता है।" (पृ० ४५७)

फिर पं० सत्यव्रत सामश्रमी के 'निरुक्तालोचन' का प्रमाण देकर आप लिखते हैं—"तैत्तिरीय संहिता मंत्र ब्राह्मणों का मिश्रण करके

आंध्रादिकों के द्वारा तैयार की गई है। इसलिए आदि में इसके रावण-रचित होने में संदेह नहीं है।" (पृ० ४५७)

"विदित हो कि यजुर्वेद की दो शाखाएँ हैं : एक का नाम है तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद और दूसरी का वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद। कृष्ण यजुर्वेद की मंत्र-संख्या अठारह हजार है, और वाजसनेयी शुक्ल यजुर्वेद की मंत्र-संख्या केवल उन्नीस सौ ही है। यथा—

अष्टादस सहस्राणि मंत्र ब्राह्मणयोः सह ।
यजूंषि यत्र पठ्यन्ते स यजुर्वेद उच्यते ।
द्वे सहस्रे शतन्यून मन्त्रे वाजसनेयके ।।

मतलब यह कि श्रीशर्माजी के मत में १८ हजार मंत्रोंवाला कृष्ण यजुर्वेद रावणकृत क्षेपक है और उन्नीस सौ मंत्रोंवाला शुक्ल यजुर्वेद शुद्ध मौलिक। इस विशाल क्षेपक पर आश्चर्य प्रकट करते हुए आप लिखते हैं—"कहाँ सौ कम दो हजार और कहाँ अठारह हजार? कुछ ठिकाना है कितना बड़ा मिश्रण किया गया है? इन दोनो संख्याओं के मिलान से ही ज्ञात होता है कि कृष्ण यजुर्वेद रावणादि द्रविड़ों का ही बनाया हुआ है, इसमें संदेह नहीं।" (पृ० ४५६)

फिर आप लिखते हैं—"वैदिकों की सनातन-मर्यादा के अनुसार यज्ञ कराने के लिए चार विद्वानों की आवश्यकता होती है। चारो एक-एक वेद के ज्ञाता होते हैं। इनके पदों के नाम इस प्रकार होते हैं : ऋग्वेदी का पद 'होता', यजुर्वेदी का 'अध्वर्यु', सामवेदी का 'उद्गाता' और अथर्ववेदी का 'ब्रह्मा'।........परन्तु इस सनातन वैदिक मर्यादा के विरुद्ध इस तैत्तिरीत संहिता मे ऊपर कहे चार कार्यकर्ताओं के स्थान में केवल एक 'चरक' नामक आचार्य ही होता है।".......'चरक अनार्य-जाति का आचार्य है।.......'चरक' को महत्व देनेवाला यह तैत्तिरीय वेद (कृष्ण यजुर्वेद) निश्चय ही दुष्कर्मी विदेशियों—असुरों का, रावण का, द्रविड़ों— का बनाया हुआ है, इसमें सन्देह नहीं। (पृ० ४५६)

इसी प्रसंग में शाखा-भेद का उल्लेख करते हुए शर्माजी लिखते हैं—"जो विद्यार्थी जिस शाखा का अध्ययन करता था, वह अपने को उसी

शाखा का और उस शाखा के प्रवर्तक ऋषि के गोत्र का कहता था। इसीलिए एक-एक वेद की अनेकों शाखाएँ हैं और वेदपाठी ब्राह्मणों के अनेकों गोत्र। परन्तु तैत्तिरीय वेद में न भिन्न-भिन्न शाखाएँ हैं न गोत्र। इसीलिए द्रविड़ों में शाखा-भेद नहीं पाया जाता। इनके यहाँ शाखा-भेद के स्थान पर अनुवाक-भेद रखा गया है। इस तैत्तिरीय वेद में ६४ अनुवाक द्रविड़ों के, ८० आंध्रों के, ७४ कर्णाटकों के और ८६ अन्य तैलंगादिकों के है।... इसलिए यह वेद इन्हीं का या इनके पूर्वाचार्य रावणादि का बनाया हुआ है।" (पृ० ४६०)

द्रविड़ों को विदेशी बताते हुए शर्माजी लिखते हैं—"पूर्व-काल में मद्रास प्रान्त में आस्ट्रेलिया, अफ्रीका और मेसोपोटामिया की 'हिट्टाइट' जाति का जमाव हो गया था।" (पृ० ४६३) "मद्रास प्रान्त में इनकी एक गोष्ठी थी, जिसका मूल प्रचारक 'वादरायण' था। इसी की शिष्य और वंश-परंपरा में स्वामी श्री आदि शंकराचार्य का जन्म हुआ। 'दि एज आफ शंकर' नामी ग्रन्थ में वंश-परंपरा के संबंध में लिखा है— 'वादरायण के शुक, शुक के गौड़पाद, गौड़पाद के गोविंद और गोविंद के शंकराचार्य हुए।'....वादरायण द्वारा संकलित 'वेदान्त दर्शन' प्रसिद्ध है। हमारा अनुमान है, गीता और उपनिषदों में मिश्रण इसी गोष्ठी द्वारा हुआ है।........प्रचार की सुविधा के लिए शंकराचार्य ने पूर्वरचित साहित्य के तीनो विभागों (वेदान्त दर्शन, गीता और उपनिषद) का भाष्य कर दिया, और बौद्धों के त्रिपिटक की नकल पर सभाष्य उपनिषद, गीता और ब्रह्मसूत्र 'प्रस्थान त्रयी' के नाम से प्रसिद्ध हो गये।" (पृ० ४६४)

आगे चलकर शर्माजी लिखते हैं—"प्रस्थान-त्रयी में आसुर दर्शन का मिश्रण है और यह मिश्रण रावण के समय से आरंभ हुआ था जो वादरायण, शुक, गोविंदनाथ और शंकराचार्य के समय तक चलता रहा।........इसी के द्वारा भारतवर्ष में अनेक संप्रदायों को जन्म दिया गया। द्वैत, अद्वैत, विशिष्टाद्वैत, शुद्धाद्वैत और द्वैताद्वैत आदि दर्शनों तथा शाक्त, शैव, वैष्णव आदि संप्रदायों को इसी दल और इसी

साहित्य ने उत्पन्न किया। शंकराचार्य ने रावण-कृत लिंग-पूजा को शिव-लिंग-पूजा में परिवर्तित कर दिया।" (पृ० ४८८–४८६)

इन द्रविड़ों ने अपने पूर्वज 'रावण' का इतना महत्व बढ़ाया कि मंत्रों में उसकी दोहाई दी जाने लगी। चक्रदत्त नामक वैद्यक ग्रन्थ के बालरोग-चिकित्सा प्रकरण में बच्चों की रोगव्याधि-निवारण का एक मंत्र है जिसमें रावण को नमस्कार किया गया है। यथा—

"ॐ नमो रावणाय....अमुकस्य व्याधिं हन-हन मुंच-मुंच ह्रीं फट् स्वाहा।"
(पृ० ४५७)

"रावणादि का वाम मार्ग, शंकराचार्य का शैव-मत और वैष्णवों का भक्ति-मार्ग द्रविड़ों से ही पैदा हुआ है।....रावणादि की भग-लिंग-पूजा, शंकराचार्यजी की शिव-पार्वती होकर, रामानुजाचार्य की लक्ष्मी-नारायण बनकर अन्त में वल्लभाचार्य द्वारा कृष्ण राधा बन गई। राधाकृष्ण व्यभिचार के देवता बने।" (कृष्णोऽहं भवतां राधा तावयोरस्तु संगमः) (पृ० ४६६)

"मिश्र देश के देवी-देवता और वहाँ की परंपराओं और कथाओं को नाना रूपों में संस्कृत-साहित्य में प्रवेश करके इन्हीं लोगों ने प्रचलित किया। उदाहरणार्थ भारत की दुर्गा, भवानी, भैरवी, चण्डी, अन्नपूर्णा और चामुण्डा आदि देवियाँ मिश्र देश की आदि-माता इसिस के अंशों से उत्पन्न मिनर्वा, जुनो, वेनसा, हीआ, हेकेटी, डायना और ह्या आदि के ही रूपांतर हैं।........जिस प्रकार यहाँ चन्दन, अक्षत, धूप, दीप आदि से देवियों की पूजा होती है, इसी प्रकार मिश्रवाले भी अपनी देवियों की पूजा करते हैं। जिस तरह यहाँ स्वस्तिक आदि चिन्ह बनाये जाते हैं, वैसे ही मिश्रवाले भी स्वस्तिक, द्वित्व, त्रिशूल आदि चिन्ह बनाते हैं।" (पृ० ५००)

श्री शर्माजी दुखित हृदय से लिखते हैं—"समस्त वेदों का भाष्य करके वेदों की इयत्ता निर्धारित करने का साहस कभी आर्यों ने नहीं किया, परन्तु सन् ई० की चौदहवीं शताब्दी में 'सायण' नामी एक द्रविड़ ब्राह्मण ने (जिसका आदिम गुरु रावण था) यह साहस किया।

इन्होंने समस्त वेदों और ब्राह्मणों का भाष्य किया । सायणाचार्य के बाद उवट भी दक्षिण में ही पैदा हुए । इन्होंने भी सायण के आधार पर यजुर्वेद का भाष्य किया। उवट के बाद महीधर हुए । इन्होंने भी सायणाचार्य और उवट के आधार पर भाष्य किया ।" (पृ० ४६३)

श्री शर्माजी ने एक और बड़ी रहस्य-पूर्ण बात लिखी है । आप कहते हैं—"महाराष्ट्र के चितपावन मिश्र के रहनेवाले यहूदी हैं। इन्होंने ब्राह्मण बनकर उसी समय महाराष्ट्र ब्राह्मणों में घुसना चाहा था, पर नहीं घुसने पाये। इसीलिए महाराष्ट्र-ब्राह्मणों में देशस्थ और कोंकणस्थ दो भेद हैं। कोंकणस्थ ही चितपावन हैं।। ब्राह्मण होकर इन्होंने संस्कृत में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली और इन्होंने भी अपने रावणादि पूर्वजों के तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद को ही स्वीकार किया तथा यहाँ के साहित्य में कृष्ण यजुर्वेद का वेदत्व तथा मिश्र-देश के रीति-रवाजों को आर्यों के रीति-रवाजों में मिश्रित कर दिया ।" (पृ० ४६६)

मिश्र देश का 'महाकालम्पौ' देवता यहाँ का 'महाकाल' बन गया । इसी तरह दत्तात्रेय की सारी कथा और दत्तात्रेय की मूर्ति का विचित्र प्रकार मिश्र देश का ही है और वहीं से चितपावनों द्वारा यहाँ आया। दत्तात्रेय महाराष्ट्र के इष्टदेव हैं। (अवधूत-पंथ इन्हीं से चला ।) सती-प्रथा को भी चितपावनों ने धर्म मानकर शास्त्रों में घुसेड़ा । चितपावन लोग सती-प्रथा पर बड़े आसक्त थे। (क्योंकि सती-प्रथा का सूत्रपात रावण के घर से है, स्वयं रावण की पुत्रवधू मेघनाद की स्त्री सुलोचना सती हुई थी।)

पराशर स्मृति के १२ वें अध्याय के ब्राह्मनिरूपण में ऐसे श्लोक सन्निवेशित कर दिये जिनमें लिखा है सब ब्राह्मणों में चितपावन ही श्रेष्ठ हैं। गौड़, देशस्थ, द्रविड़, गुर्जर, कर्णाटक और तैलंग आदि जितने ब्राह्मण हैं, सब चितपावनो के वंशज हैं । यथा—

कोंकणाश्रित पूर्वास्ति चितपावन संज्ञकः ।
ब्राह्मणेषु च सर्वेषु यतस्त उत्तमा मताः ।।" (पृ० ४६७)

❀ ❀ ❀ ❀ ❀

वैदिक धर्म के उद्भट समर्थक और आर्यसमाज के प्रकांड पंडित श्री रघुनंदन शर्मा की ऊपर-लिखी खोज से, यदि यह सत्य है तो, यह बात बिलकुल स्पष्ट हो जाती है कि महापंडित रावण भारतीय द्रविड़ों का सुकृती पूर्वज, शाक्त-मत अर्थात् तंत्र-आगम का प्रवर्तक तथा शैव-मत का चोटी का आचार्य था। वह १८ हजार मंत्रोंवाले तैत्तिरीय कृष्ण यजुर्वेद का मंत्र-द्रष्टा महर्षि एवं समस्त वेदों का प्रथम भाष्यकार था—सायण, उवट और महीधर आदि वेद-भाष्यकार उसके पद-चिन्हों पर चलनेवाले, उसी की परंपरा के भाष्यकार हुए हैं। जगद्गुरु आदिशंकराचार्य का अद्वैत-वाद या मायावाद (जिसे प्रच्छन्न बौद्ध कहा गया है) रावण-निर्देशित अथवा रावण-पथ-प्रदर्शित दर्शन है, जो कि द्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, शुद्धाद्वैतवाद, अनिर्वचनीय भेदाभेदवाद आदि वादों का जनक है। काली, दुर्गा, भैरवी, चामुण्डा, अन्नपूर्णा आदि देवियों एवं शिवलिंग-पूजा को संस्कृत-साहित्य में घुसेड़कर उनका देशव्यापी प्रचार करानेवालों का आदिगुरु रावण है। यहाँ तक कि 'भक्तिवाद', जिसका भारत में सर्वतोधिक प्रचार है, की जड़ रावण है। कृष्ण यजुर्वेद के मानने वाले द्रविड़ और कोंकणस्थ चितपावन ब्राह्मण सब रावण की परंपरा के हैं। महाविद्वान् लोकमान्य बालगंगाधर तिलक, हिंदू महासभा के सभापति वीर सावरकर चितपावन हैं और सुना है राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रवर्तक डाक्टर हेडगेवार एवं गुरुप्रवर गोलकरजी भी चितपावन ही हैं। शायद दाक्षिणात्य नम्बूद्री ब्राह्मण भी द्रविड़ ही हैं।

तब, आश्चर्य है कि इतने महा महिमामय मानव रावण का, जिसका ज्ञान समस्त भारत में व्याप्त है, हर साल पुतला फूँककर इतना तिरस्कार क्यों किया जाता है ? क्या रामलीला का यह हुरदंग असभ्यतापूर्ण और शरारत-भरा प्रचार नहीं है ? ऐसी दशा में, यदि दाक्षिणात्य द्रविड़ कजगम के लोग इसके विरोध में राम के पुतले फूकते और रामायण जलाते हैं, तो वह सकारण है। उनका वह काम हिंदू-हुरदंग की प्रतिक्रिया मात्र एवं उसके विरुद्ध रोषप्रकाश है। अतएव इन रावणफुकनी रामलीलाओं को यदि आजकल की शांतिपूर्ण सह-

अस्तित्व-नीति के विपरीत अराष्ट्रीय कहा जाय, तो अनुचित न होगा।

५. रावण के संबंध में दक्षिणी द्रविड़ कजगम के प्रमुख नेता का मत

पिछले अध्याय में पाठकों ने पढ़ा कि रावण दाक्षिणात्य द्रविड़ों की उस गोष्ठी का मूल पुरुष था जिसके परवर्ती प्रधान बादरायण व्यास हुए जिन्होंने ब्रह्मसूत्रों का संकलन किया। और यह भी मालूम किया कि इसी द्रविड़-गोष्ठी ने सारे संस्कृत-साहित्य को अनार्य आख्यानों, अनार्य दर्शनों, अनार्य देवी-देवताओं की महिमाओं एवं अनार्य रस्मों को घुसेड़कर गंदा कर दिया तथा इसी गोष्ठी के विद्वान् सायण, उवट और महीधर ने आर्यों के पवित्र और अनंत वेदों के भाष्य करके उनकी इयत्ता कर दी।—यह मत एक वैदिक-धर्मी आर्य पंडित का है और बहुत ही मजेदार है। किन्तु इसके आगे जब आर्य-विद्वान् यह कहते हैं कि द्रविड़ लोग आस्ट्रेलिया, मिश्र और पैलस्टाइन से आये हुए विदेशी हैं, रावण आस्ट्रेलिया से लंका होकर भारत आया, तो जान पड़ता है लेखक की इस स्थापना का आधार "श्री मेल्लाडो वेंकट रत्नम्" लिखित "Rama, the Greatest Pharaoh of Egypt" पुस्तक है जिसमें सिद्ध किया गया है कि 'राम और रावण' की सारी कथा मिश्र के 'रामसेस द्वितीय' की कहानी है। इस मत के मान लेने से सारी रामायण विदेशी बन जायगी, रावण को विदेशी बनाने में 'राम' से भी हाथ धोना पड़ेगा और सारा गुड़ गोबर हो जायगा। अतएव, आर्य-पंडित की यह स्थापना भयावनी है। रावण का द्रविड़ होना तो दक्षिणी द्रविड़ कजगम के लोग भी स्वीकार करते हैं और राम-रावण-युद्ध को वे लोग 'आर्य-द्रविड़ संघर्ष' मानते हैं। अधिकांश इतिहास-लेखकों का यही मत है कि द्रविड़ लोग दक्षिणी भारत के मूल-निवासी हैं, जो आर्यों के आने से पहले सारे उत्तर भारत में फैले हुए थे। जब आर्यों ने भारत में प्रवेश किया, तो उनसे पराजित हो द्रविड़ लोग अपने मूल स्थान दक्षिण भारत की ओर चले गये क्योंकि दक्षिणी भाग अधिक सुरक्षित था और

वहीं से शांतिपूर्वक अपनी सभ्यता और संस्कृति का विकास करते रहे। प्राय: सभी इतिहास-लेखक द्रविड़, कोल, भील, संथाल, गोंड, उराँव, शबर, मुंडा, हो आदि को भारत के आदि-निवासी मानते हैं; केवल आर्य, मंगोल, ईरानी, यूनानी, शक सीथिन, यूर्ची कुशान, हूण, मुसलमान व युरोपीय ख्रिश्चियन आदि को ही बाहर से आये हुए विदेशी बतलाते हैं।

वैदिक संपत्ति के लेखक के मत में रावण द्रविड़ था किंतु अन्य पुराविदों ने यह भी सिद्ध किया है कि रावण गोंड-जाति का था और उसकी लंका मध्य भारत में थी। वालि, सुग्रीव, हनुमान् आदि रामायणों के वानर तथा जाम्बवान् आदि भालू उराँव और शबर-जाति के मानव थे। इस मत का विस्तृत विवरण अगले अध्याय में दिया गया है, इस अध्याय में केवल द्रविड़ों की बात लिखी जाती है जो आजकल खिझाये हुए हैं और रावण के बदले में राम की तसवीरें फूँकते और रामायणों को जलाते हैं। इस प्रसंग में यह कह देना अनावश्यक न होगा कि रामायणों, खासकर रामचरितमानस में जो यह लिखा है कि विष्णु के द्वारपाल जय-विजय अथवा राजा प्रतापभानु ब्राह्मणों के शाप से रावण-कुंभकरन हुए तथा नारद के शाप से विष्णु को नर-तन धारण करके राम-रूप में नारी-विरह से दुखित होना पड़ा अथवा ब्राह्मण के शाप से राजा दशरथ को पुत्र-वियोग में मरना पड़ा अथवा जब विष्णु राम-रूप में अवतरित हुए तो सारे देवता बंदर और भालू बन गये। इत्यादि। ये पुरानी बातें आज के बुद्धिवादी मस्तिष्क को ग्राह्य नहीं हैं, इन को अब ब्राह्मणी तानाशाही आतंकवाद का प्रचार मात्र समझा जाता है।

पुराना रोमांटिक जमाना खत्म हो गया। अब यथार्थवादी युग है। आज का मानव पुरानी दैवी, दानवी, अलौकिक चमत्कारी बातों को रोमांस समझता है; केवल स्वाभाविक मानवीय बातों को ही सुनना पसंद करता है। कोई भी युनिवर्सिटी का ग्रैजुएट—जिसने विज्ञान पढ़ा है, खगोल, भूगोल, भूगर्भ-शास्त्र और विकासवाद की शिक्षा पाई है—कभी यह मानने को तैयार न होगा कि यह पृथ्वी पाताल में सहस्त्र फनवाले शेषनाग के शिर पर रखी है और जब शेषनागजी फन

हिलाते हैं तो भूकंप आता है। यह कल्पना भी अब विचार-सीमा से बाहर और नितांत विश्रृंखलित समझी जाती है कि भूतकाल में मनुष्य पूर्ण ज्ञानी, समस्त विद्या, समस्त ज्ञान और अलौकिक शक्ति संपन्न अवतरित हुए और अपने वंश में एकाएक उस ज्ञान का प्रसार कर दिया, जब कि यह देखा जाता है कि बच्चा विना सिखाये और विना अनुकरण किये कुछ नहीं सीखता और विना पढ़ाये कुछ नहीं पढ़ता। हाँ, अभ्यास, कठिन श्रम, साधना और अध्यवसाय से मनुष्य अपने में असामान्य ज्ञान और असाधारण शक्तियों का विकास कर सकता है। तप का अर्थ पंचाग्नि तापना या जलशयन करना नहीं, अपितु सम्यक् उपाय द्वारा किसी काम में एकनिष्ठ हो इस वज्र-संकल्प और वज्र-चित्त से जुट जाना है कि "कार्यं वा साधयामि शरीरं वा पातयामि।" इसीसे सिद्धि मिलती है और यही सच्चा तप है।

यह बात सभी रामायणों से सिद्ध है कि रावण ने अपने आरंभिक जीवन में घोर तप किया और अपनी वज्र-साधना द्वारा अपरिमित शक्ति और अजेय बल प्राप्त किया। इसमें न कुछ अलौकिक है, न असंभव। इस शक्तिमान तपस्वी का मुकाबला सतत सुरा पीने और सुर-सुन्दरियों के साथ अहर्निश रमण करनेवाला विषयी-भोगी देवराज इंद्र भला कैसे कर सकता था ? रावण तपस्वी, मेधावी, महावीर, बलवान, पंडित, सुगठित शरीर और विशाल वक्षवाला सुन्दर पुरुष था। वह स्त्री-लम्पट नहीं था। सर्वांग-सुन्दर और सर्वगुण-संपन्न वीरों से सुन्दरियाँ, वृक्ष में दौड़कर लिपटनेवाली लता की भाँति, स्वतः लिपट जाती हैं। रावण यदि कृष्ण यजुर्वेद और उड्डीस-तंत्र का कर्ता था, तो निश्चय ही वह मारण-मोहन-वशीकरण-आकर्षण-उच्चाटन-स्तंभन षड़ंग मंत्रों का ज्ञाता भी रहा होगा। वह जिस स्त्री की ओर सम्मोहिनी दृष्टि से देखता होगा, वह तत्काल आत्म-समर्पण करके उसकी वशवर्तिनी हो जाती होगी।

रावण सीता को भी जबर्दस्ती पंचवटी से लंका नहीं ले गया। यह इसी से सिद्ध है कि लंका ले जाकर उसने सीता को अपने सुसज्जित

रनिवास में—जहाँ मुनियों के मन मोहनेवाली नरों, नागों, देवों और गन्धर्वों की महासुन्दरी प्रमदा कन्याएँ कलोल करती थीं—दाख़िल न करके उन्हें अलग अशोक वाटिका में स्थान दिया। द्रविड़ कजगम, मद्रास के वयोवृद्ध नेता पेरियार ई० वी० रामा स्वामी ने, अपनी "True reading of Ramayana" में यही लिखा है कि "Ravana carried away Sita to Lanka as a retaliatory measure and not out of love towards Sita, nor with any motive to seduce another man's wife." (पृ० ५४)

"Ravana most respectfully with bowed head and without touching her person made Sita follow him."........"Ravana has not used any violence and Sita of her own accord ran after him willingly." (पृ० ३७)

इसी सिलसिले में आप फिर लिखते हैं—"Hanuman himself described in his own words about Ravana's refinement in love affairs—All the women in Ravana's palace offerd themselves voluntarily of their own free will to be his (Ravana's) wives. He had not touched any woman without her consent, i.e., by force. (पृ० ५४-५५)

आप कहते हैं—"Even at the gravest provocation, even in a fit of ungovernable rage, and even at the most irrepressible incitement Ravana, said Valmiki, had not even thought of mutilating the ears, the breast and the nose of Sita as a revenge for what had been done to Soorpanagai by Rama and Lakshmana." (पृ० ५५)

रावण, वैदिक देवों, याज्ञिक ऋषियों और ब्राह्मणों का विरोधी क्यों था ? इस संबंध में रामा स्वामी लिखते हैं—"Ravana hated Devas and Rishis. Why ? They in name of Yagyam, i.e., offering sacrifices to the sacred fire, committed the most heinous crime of killing the poor dumb animals in a tortuous manner. For no other reasons he hated them." आप लिखते हैं—"Valmiki himself said, "Ravana was a good man. He was magnanimous and handsome. But he (Ravana) chastised Brahmins whenever he saw them performing Yagyams and drinking Soma juice." (पृ० ५५)

रामा स्वामी ने यह बात बड़ी ही पते की लिखी है कि—In the Bengali book "Lankavathara Sutra" it is written that Ravana was a Dravidian King who embraced Buddhism and he was a philosopher of the type of Plato and Aristotle. Because it was spoken so high of Ravana in the Buddhist literature, the Brahmins and Pandits characterised Ravana in such vile terms in the Ramayana written by them.....Ravana ruled the land with love and grace.—"

"Ravana while dying in the battle field called Rama to his side and whispered into his ears about the doctrine of kindness and that the battle he (Rama) had fought was only through deceit and fraud. Thus we find........that Ravana preached truthfulness and uprightness. (पृ० ५६-५७)

वाल्मीकि का हवाला देकर आप लिखते हैं—"Ravana was

a great learned man, a great saint, a master of scriptures (Shastras and Vedas), a merciful protector of his subjects and relatives, a brave man, a very strong man, a chivalrous soldier, a very pious man, a beloved son of God and a recipient of many boons. Valmiki himself made mention of the above ten merits and praised Ravana on several occasions."

इससे अधिक रावण की प्रशंसा और क्या हो सकती है ?

प्रश्न उठता है, फिर ऐसे सर्वगुणसंपन्न, सुयोग्य और महामानव रावण का विनाश क्यों हुआ ? इस प्रश्न के दो उत्तर हैं : एक यह कि रामचन्द्रजी ने अपनी पैनी और कूटनीतिक बुद्धि से रावण के प्रतिद्वंद्वी बालि को धोखे से मारकर उसके स्त्री और राज्यलोलुप भाई सुग्रीव को राजा बनाकर उससे मित्रता कर ली और उसकी अपार वानर-सेना लेकर लंका पर चढ़ाई कर दी ; दूसरा यह कि रावण के विद्रोही भाई राज्य और स्त्री-लोलुप विभीषण को लंका का राजा बनाने का प्रलोभन देकर उन्होंने अपना साथी बना लिया और उस घरभेदी कुलांगार ने रावण के सारे गुप्त भेद राम को बता दिये।

६. द्रविड़-रामायण की कुछ विचित्र मान्यताएँ

पिछले अध्याय में द्रविड़ कजगम के नेता पेरियार रामस्वामी के अंग्रेजी उद्धरणों में यह पढ़कर उत्तर भारत के पाठकों को आश्चर्य हुआ होगा कि रावण बौद्ध-धर्मावलंबी अहिंसा-धर्म-परायण था और वह वैदिक देवों एवं याज्ञिक ऋषियों व ब्राह्मणों का इसलिए विरोध करता था और उन्हें दंड देता था कि वे लोग यज्ञों में गो-अश्व-अज आदि निरीह पशुओं की बलि करते थे, सोम-सुरा का पान करते थे और दान के बहाने जनता का घृत, अन्न, सुवर्ण और पशु-धन छीन लेते थे। अथवा युद्ध में आहत होकर जब रावण मृत्यु-शय्या पर पड़ा था, उसने राम को

बुलाकर उन्हें करुणा-धर्म का तत्व समझाया और उन्हें दया-भाव से जनता का शासन करने का उपदेश किया। इस विचार से चौकन्ने होने का एक बड़ा कारण काल-भेद है। रामायण और भागवतादि पुराणों में रावण का काल त्रेता-युग का अंत बताया गया है और बुद्ध को कलियुग में विष्णु का नवाँ अवतार। इस धारणा के वशवर्ती पाठक अवश्य कहेंगे, त्रेता-युगीन रावण कलियुगी बौद्ध कैसे हो सकता है ?

किन्तु बुद्धिवादी पाठकों को यह स्वीकार करना होगा कि उपर्युक्त धारणा साम्प्रदायिक है और साम्प्रदायिक बातों में धार्मिक पक्षपात होता ही है। इस संबंध में नीचे-लिखी बातें विचारणीय हैं।

जैन-रामायण में सीता को 'श्राविका' लिखा है, और रावण पंचवटी में जैन-यती के रूप में सीता के पास गया था और सीता ने उसे सप्रेम भोजन कराया था। त्रेता में यह 'यती' का रूप कहाँ से आ गया ? रामायण में लिखा है, राम के वन-गमन पर भरत ने साकेत (अयोध्या) का ऐसा शासन-प्रबंध किया कि राज्य से बौद्धों को दस्युओं की भाँति निकाल दिया था। राम-काल में साकेत से निकाले गये ये बौद्ध कहाँ से आ गये ? रामायण से यवनों (यूनानियों) और शकों (सीथियनों) के संघर्ष का पता चलता है। किष्किंधाकांड में सुग्रीव ने कहा है कि यवनों का देश तथा शकों के नगर कौरवों के देश (हरियाणा) तथा हिमालय के बीच में हैं। यूनानी विजेता सिकंदर सबसे पहले ३२६ ई० पू० में भारत आया था और शक यूनानियों के बाद ई० पू० दूसरी शताब्दी में भारत आये। रामायण में यवनों और शकों के भारत-निवास का उल्लेख क्यों है ? तब जिस पुस्तक में यूनानियों और शकों का वर्णन हो, स्पष्ट है कि वह उनके आगमन के बाद ही लिखी गई होगी।

इसी तरह रामायण में लिखा है कि जो सुरा पीते थे वे सुर कहलाते थे, जो सुरा नहीं पीते थे वे असुर कहलाते थे। इसीसे 'सुरा' का दूसरा नाम है 'सुरप्रिया' या 'देवानां प्रिया'। वन-गमन के समय सीता जब गंगा और यमुना के किनारे पहुँचीं, तो उन्होंने मानता मानी थी कि यदि मैं पति के साथ सकुशल लौटी तो हजार घड़े शराब और नाना

प्रकार के पशुओं के मांस से, मैया ! तुम्हारी पूजा करूँगी ! यह मद्य-मांस की मानता-पूजा आर्य-रामचन्द्र जी के घर में क्यों होती थी ? फिर स्वयं श्री रामजी वन में मृगा का शिकार करने गये थे, जब कि सीता-हरण हुआ। केवल रामजी ही शिकारी नहीं थे, उनके पिता दशरथ ने भी शब्दवेधी बाण द्वारा मृग का शिकार किया था जबकि वह तीर अंधमुनि के पुत्र श्रवण के लगा और मुनि के शाप से दशरथ को पुत्र-वियोग में मरना पड़ा। फिर सिंहासन पर विराजमान होकर स्वयं राम-चन्द्रजी ने अश्वमेध-यज्ञ किया था !

अतएव, यह सिद्ध है कि जिस आदिकाव्य वाल्मीकि में सर्वप्रथम रामचरित्र लिखा गया, उसकी रचना भगवान् गौतम बुद्ध के कई सौ वर्ष बाद हुई। अष्टाध्यायी व्याकरण के रचयिता पाणिनि का समय सन् ईसवी से ३०० वर्ष पूर्व निश्चित हुआ है। वे पंजाब के शालातुर ग्राम में पैदा हुए और उन्होंने पाटलिपुत्र में वर्ष उपाध्याय से शिक्षा लाभ की एवं हिमालय में शिव-सेवा के प्रसाद से अपना व्याकरण लिखा। वाल्मीकि रामायण पाणिनि द्वारा निर्दिष्ट संस्कृत का प्रथम या आदि महाकाव्य माना गया है, अत: उसका रचना-काल पाणिनि के बाद ही हो सकता है। इत्यादि।

इन सब बातों पर ध्यान देने से रावण के अहिंसा-धर्मी बौद्ध होने में न कोई आश्चर्य रहता है, न संशय।

पेरियार रामस्वामी की रामायण की एक और बात पाठकों को चौंका देने वाली है, यद्यपि उसे उन्होंने वाल्मीकि आदि रामायणों के आधार पर सिद्ध किया है। रामस्वामी लिखते हैं सीता (Willingly) स्वेच्छा से रावण के साथ लंका गई थीं, और इस बात का प्रमाण पाकर कि उनके हृदय में रावण का प्रेम है, राम ने उन्हें गर्भिणी अवस्था में घर से निकालकर जंगल में छुड़वा दिया था। रामस्वामी की स्थापना और दलीलों का आधार नीचे लिखे तथ्यों में है—

१. सीता की उत्पत्ति संदिग्ध है। राजा जनक ने उन्हें खेत में पाया। पता नहीं वह किसकी कन्या थीं। उनके चरित्र में वे सारे लक्षण हैं जो

द्रविड़ नारियों में होते हैं। रावण द्रविड़ था, इसलिए उसमें उनका प्रेम-भाव सजातीयता के कारण स्वाभाविक था।

२. सीता-स्वयंवर के समय राम की आयु उनकी माता के कथनानुसार ५ वर्ष की, पिता के अनुसार १० वर्ष की और सीता के अनुसार १२ वर्ष की थी जबकि सीता की आयु २० अथवा २५ वर्ष की थी। राम वयकिशोर थे, सीता तरुणी प्रौढ़ा। सीता बलिष्ठ भी थीं। एक दिन सफाई करते समय उन्होंने अकेले धनुष को उठाकर अलग रख दिया था। उनका यह बल देखकर ही राजा जनक ने प्रतिज्ञा की कि इस लड़की का विवाह उसी वीर के साथ होना चाहिए जो इस धनुष को खींचकर तोड़ डाले।

३. रावण और वाण दोनो सीता-स्वयंवर में गये थे। किंतु ये दोनो महावीर अपने आराध्यदेव शिव का धनुष तोड़ना अनुचित समझकर, बिना हाथ लगाये, केवल उसे प्रणाम करके, वापस चले गये।

४. श्रीरामचन्द्र ने जिस धनुष को तोड़ा वह पहले ही से टूटा हुआ था। राम का धनुष उठाकर तोड़ना उस सभा में किसी ने देखा ही नहीं। इसी बात पर स्वयंवर में उपस्थित सब राजे बिगड़कर युद्ध के लिए उद्यत हो गये थे कि उसी समय परशुराम आ गये। गोसाई तुलसीदास जी ने भी काव्य के लपेट में इस सत्य को तो कह ही डाला है। यथा—

लेत चढ़ावत खैंचत गाढ़े, काहु न लखा देख सब ठाढ़े

और परशुराम ने जब क्रोधपूर्वक पूछा, तो लक्ष्मण ने भी साफ कह दिया कि धनुष पुराना था। छूते ही अपने आप टूट गया। राम का कोई दोष नहीं। यथा—

छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू, मुनि बिनु काज करिय कत रोषू

५. सीता सयानी हो गई थीं। उनके योग्य कोई वर नहीं मिलता था। राजा जनक चाहते थे, कोई आर्य-वर मिले ताकि किसी अनार्य को दामाद न बनाना पड़े। इसलिए उन्होंने अपने मित्र विश्वामित्र से सहायता की प्रार्थना की। विश्वामित्र अयोध्या के सूर्यवंशी राजा दशरथ के दो अल्पायु पुत्रों को ले आये, और 'वय किशोर' राम के साथ 'तरुणी' सीता का विवाह करा दिया। (यह कोई अतिरिज की बात

नहीं, आज भी सूर्यवंशी सीसोदिया-कुल के अल्पायु राजकुमारों के दर्जनों ब्याह २५-२५ वर्ष की तरुणी, प्रमदा और प्रौढ़ा कुमारियों के साथ हो जाते हैं और लड़कीवाले सीसोदिया-कुल से नाता जोड़कर अपने को धन्य समझते हैं।)

६. पेरियार रामस्वामी ने वाल्मीकि का हवाला देकर लिखा है कि सीता जब लंका में थीं, एक दिन रावण ने कहा—"सीता ! हमारा-तुम्हारा संयोग divine will (ईश्वरीय इच्छा) है, तुम हमारे साथ आनन्द करो," तो सीता ने आँखें बन्द करते हुए कहा—"You are free to embrace this body of mine as you will. .... Sita did not give her consent to Ravana to cohabit her." (पृ० ३६)

७. रावण के मारे जाने पर जब राम ने सीता से पूछा—"सीता ! तुम इतने दिन लंका में रावण की क़ैद में रहीं, क्या रावण ने कभी तुम्हारा स्पर्श नहीं किया ?" तो सीता ने उत्तर दिया—"मैं क्या कर सकती थी ? मैं अबला नारी। मेरा शरीर उसकी क़ैद में। किन्तु मैंने अपनी रज़ामंदी से कोई भूल नहीं की। मेरा मन सदा आपके साथ रहा।"

राम ने कहा—"क्या तुम अपने मन की सचाई के लिए अग्नि-परीक्षा दे सकती हो ?" और रामायणों में लिखा है सीता ने अग्नि-परीक्षा दे दी।

फिर भी राम का संदेह दूर नहीं हुआ। एक दिन अयोध्या में राम के सिपाहियों के सरदार दुर्मुख ने खबर दी कि अयोध्या के एक धोबी ने अपनी स्त्री को यह कहकर घर से निकाल दिया कि

नाऽहं विभर्षि त्वां दुष्टामसतीं परवेश्मगाम्।
स्त्रीलोभी विभृयात् सीता रामो नाऽहं भजे पुनः॥

अर्थ—मैं तेरा भरण-पोषण न करूँगा। तू दुष्टा और असती है। पराये घर में रही है। राम स्त्री-लोभी हैं, जो उन्होंने सीता को ग्रहण किया। मैं राम नहीं हूँ। मैं तुझे अंगीकार नहीं कर सकता।

इसके बाद ही राम को 'सिस्टर-इन-ला' कुकुड़ावती राम को सीता का

रावण-प्रेम दिखाने के लिए अंदर ले गई, और राम ने सोती हुई सीता की छाती पर उस पंखे को देखा जिसमें रावण की तस्वीर बनी थी। और बाहर आकर राम ने लक्ष्मण को आदेश दिया कि वे आज ही रात को सीता को ले जाकर जंगल में छोड़ आवें।

और गर्भिणी सीता जंगल में छोड़ दी गई।

वन में सीता के दो पुत्र हुए, जिन्हें राम ने ले लिया, और इसके बाद राम के पुनः अपमानजनक वचन बोलने पर दुखित सीता धरती में समा गई या आत्महत्या कर ली।

सीता के साथ राम का कठोर दुर्व्यवहार इस कारण था कि वह आर्य-नारी नहीं थी। अन्यथा पराये घर में रही स्त्री को पुनः अंगीकार कर लेने का आर्यों में रिवाज था। देवगुरु बृहस्पति की स्त्री तारा को चंद्रमा हर ले गया था और उसने उससे बुध नाम का एक बच्चा भी पैदा किया। लेकिन ब्रह्मा से प्रार्थी होने पर ब्रह्मा ने चंद्रमा की भर्त्सना करके तारा को बृहस्पति को वापस दिला दिया, और अपने पुत्र बुध को चंद्रमा ने अपने पास रख लिया। इस प्रकार बरसों पराये घर में रही पत्नी को, जिसके एक बच्चा भी पैदा हो चुका था, बृहस्पति ने पुनः पत्नी-रूप में ग्रहण किया और देवगुरु देव-समाज से बहिष्कृत नहीं हुए। लेकिन राम की लीला न्यारी है। रामजी ने स्वर्ग जाने की कामना से तप करनेवाले शंबूक का सिर यह कहकर काट डाला था कि तू शूद्र होकर तप करता है, देख तेरे तप करने से ब्राह्मण का जवान बेटा मर गया।

शूद्र तपस्वी शंबूक का तप करना आर्यों की रंगभेदी व्यवस्था के खिलाफ था, और श्रीरामचन्द्रजी मर्यादापुरुषोत्तम थे। उस वर्ण-व्यवस्था वाली आर्य-मर्यादा को क़ायम करना ही उनका जीवनोद्देश्य था।

पेरियार रामस्वामी को भी कोसा जा सकता है किन्तु उनके इस सच्चे रामायणाध्ययन का खंडन कैसे होगा ?

पेरियार रामस्वामी ने एक चेतावनी भी दी है। आपने बताया है कि रामचरित्र की असलियत अगर समझना हो, तो वाल्मीकि पढ़ना चाहिए। वाल्मीकि यद्यपि शत्रु-रक्त के प्रथम आर्य-कवि थे और उन्होंने भी

रावण को अत्याचारी और नरभक्षी राक्षस ही कहा है, फिर भी कहीं-कहीं उन्हें रावण के गुणों की भी प्रशंसा करनी पड़ी है, अतः इसमें ढूँढने से बहुत कुछ सचाई मिल जाती है। उसके बाद तुलसी, कृत्तिवास, कम्बा आदि जितनी रामायणें रामभक्तों द्वारा लिखी गई हैं, उनमें अवतार और भक्तिवाद घुसेड़कर रामचरित्र का बहुत अधिक उलटफेर करके क्या से क्या बना दिया गया है। रावण की महानता और उज्ज्वल-चरित्र का चित्रण प्राचीन तामिल ग्रन्थों में मिलता है।

७. द्रविड़-संस्कृति और आर्य-संस्कृति का तुलनात्मक विवेचन

इतिहास-लेखकों का मत है कि आर्य लोगों ने जब भारत में प्रवेश किया, तो उन्हें द्रविड़ों से लोहा लेना पड़ा। द्रविड़ लोग कद में आर्यों से छोटे, कम गोरे, पक्के रंग के भूरे या काले थे और आर्य लोग लम्बे तथा गोरे-चिट्टे। द्रविड़ लोग काफ़ी बलवान् और योधा थे परन्तु आर्य लोग उनसे ज्यादा बलिष्ठ और लड़ाकू थे तथा उनके अस्त्र-शस्त्र भी द्रविड़ों से अच्छे थे, अतः उन्हें पराजित हो उत्तर-भारत छोड़कर दक्षिण-भारत में हट जाना पड़ा।

आर्य लोग द्रविड़ों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखते थे और उन्हें दस्यु, दानव, राक्षस आदि कहा करते थे, यद्यपि वे ऐसे थे नहीं। तामिल-साहित्य से द्रविड़ों की सभ्यता का जो पता चलता है वह आर्य-सभ्यता से कम नहीं, बल्कि कुछ बातों में बढ़ी हुई है। द्रविड़ लोग अत्यंत प्राचीन काल से ईंटों और पत्थरों के मकान बनाकर रहते थे जिनमें आमोद-प्रमोद की सभी वस्तुएँ थीं। वे सोने और चाँदी के आभूषण पहनते थे। वे भवन-निर्माण में बड़े दक्ष थे। वे ऐसे नगरों में निवास करते थे जिनमें परकोटे और क़िलेबंदी रहती थी। वे खेती के काम में भी बड़े निपुण थे, सिंचाई के लिए नदियों में बाँध बाँधते थे। वे मिट्टी के बड़े सुन्दर बर्तन बनाते थे। वे अच्छे शिल्पकार और कला-प्रेमी थे। उन्हें लेखन-कला का भी ज्ञान था। उनका तामिल देश सोना, चाँदी, मोती, फीरोजा आदि

से परिपूर्ण था। वे अच्छे व्यापारी थे। वे समुद्र से नहीं डरते थे, नावें और जहाज बनाकर उनके द्वारा विदेशों से व्यापार करते थे। उन्हें समुद्री जीवन प्रिय था, अतएव वे सामुद्रिक व्यापार में चतुर थे, जबकि आर्य लोग समुद्र से डरते और भूमि का जीवन अधिक पसंद करते थे। द्रविड़ों का शासन पंचायती था जब कि आर्यों का शासन प्राय: राजतंत्री या अधिनायकी होता था।

द्रविड़ों के परिवार प्राय: मातृप्रधान होते थे, और आर्यों के पितृ-प्रधान। द्रविड़ों में जातिभेद और जाति-प्रथा नहीं थी, जबकि आर्यों के समाज का मूलाधार जातिवाद और वर्ण-व्यवस्था थी जिसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों कि कार्य अलग-अलग निश्चित थे। द्रविड़ों में यह रंग-भेद या जातिभेद नहीं था। मातृप्रधान परिवार होने से द्रविड़ अपनी माता के भाई की सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते थे जब कि आर्य लोगों के परिवार पितृप्रधान होते थे और वे केवल पैत्रिक सम्पत्ति के उत्तराधिकारी होते थे। द्रविड़ों में चचाजाद भाई-बहन का विवाह हो सकता था जब कि आर्यों में यह प्रथा न थी।

द्रविड़ों की भाषा भी आर्यों की भाषा से बिलकुल भिन्न थी। इन दोनों जातियों के धर्म में भी बहुत अन्तर था। द्रविड़ लोग पृथ्वी की पूजा करते थे। भुइयाँ भवानी, काली, तारा, दुर्गा, मसानी इत्यादि इनकी देवियाँ थीं एवं शिव शंकर महान देवता। ये लोग नागों की भी पूजा करते थे। परन्तु कुछ लोगों का मत है कि नाग-पूजा इन्होंने आर्यों से सीखी। आर्यों के देवता सूर्य, चन्द्र, अग्नि, वायु, जल, तारे आदि थे। द्रविड़ लोग योग-साधन करते थे जबकि आर्य लोग यज्ञादि कर्मकांड करते थे। द्रविड़ों का शिव महायोगीश्वर, विरक्त, सर्वस्वत्यागी था, जबकि आर्यों का देवराज इंद्र संतत सुरापी और महाभोगी था। द्रविड़ों का धर्म त्यागमय था जबकि आर्यों का भोगैश्वर्य मय। द्रविड़-संस्कृति इस दु:खमय संसार से निवृत्त होकर मोक्ष और निर्वाण की कामना करती है, जबकि आर्य-संस्कृति सांसारिक भोग-ऐश्वर्य और जीवनांत में स्वर्ग-सुख की कामना करती है।

आर्य लोग सूर्योपासक थे और द्रविड़ लोग आत्मवादी या एक

ईश्वरवादी। भक्तिवाद द्रविड़ों के धर्म की विशेषता थी, जब कि भक्ति-धर्म को आर्यों ने द्रविड़ों से सीखा। संक्षेप में यह कि द्रविड़ मातृप्रधान थे, आर्य पितृप्रधान; द्रविड़ क्षेत्रप्रधान थे, आर्य बीजप्रधान; द्रविड़ मानवतावादी थे, आर्य गोत्रवादी या वंशवादी; द्रविड़ समष्टि-वादी थे, आर्य व्यष्टिवादी; द्रविड़ पंचायतवादी थे, आर्य अधिनायक-वादी; द्रविड़ जनतंत्रवादी थे, आर्य राजतंत्रवादी; द्रविड़ गुणवादी थे, आर्य जन्मवादी; द्रविड़ों में सार्वजनिकता थी, आर्यों में वंशवादी अहंकार; द्रविड़ों का ध्येय त्याग था, आर्यों का भोगैश्वर्य; आर्यों को अपने गोरेपन और सुन्दरता का बड़ा घमंड था, द्रविड़ों में ऐसा कोई घमंड नहीं; द्रविड़ों में दूसरों की सेवा करने का भाव था, आर्यों में दूसरों से सेवा लेने का; आर्यों में वंशानुगत अधिकार-भेद है, द्रविड़ों में भेदभाव-शून्यता; आर्य-प्रवृत्ति एकदेशी व एकजातीय है, द्रविड़ों की विश्वजनीन; द्रविड़ों में अनासक्ति, निराशा और निममता का भाव है, आर्यों में आसक्ति, ममता और महत्वाकांक्षा; द्रविड़ों का परम धन संतोष है, आर्यों में कामनाओं की अतृप्ति-अपूर्ति; द्रविड़-संस्कृति प्रेम-मयी है, आर्यों की घृणामयी; द्रविड़-संस्कृति समतामयी है, आर्यों की वैषम्य-पूर्ण; द्रविड़ों में मैत्री भावना है, आर्यों में स्थायी विद्वेष और महात्मा गांधी के ज्ञानालोक में द्रविड़ों के सिद्धांत में विकेंद्री-करण है, आर्यों में असीम केंद्रीकरण। इत्यादि।

यह केवल द्रविड़ों और आर्यों के मौलिक और स्वाभाविक सांस्कृतिक विभेद का दिग्दर्शन है। वैसे बहुत काल तक एक देश में निवास करने से द्रविड़ और आर्य दोनो एक दूसरे से प्रभावित हुए हैं और अगणित द्रविड़ मान्यताएँ आर्यों में एवं आर्य-मान्यताएँ द्रविड़ों में समा गई हैं, जनका जातिगत पार्थक्य नहीं किया जा सकता, वैयक्तिक भिन्नता अब भी देखी जाती है। सर्वोपरि यह कि बुद्ध-प्रदर्शित माध्यमिक दर्शन एवं विशुद्धि-मार्ग द्वारा जो धार्मिक महाक्रान्ति हुई, उसने भारतीय धर्मों और संस्कृतियों के रुख बदल दिये—सभी अपने धर्मों को बौद्ध-सदाचार और बौद्ध-मान्यताओं के अनुरूप सिद्ध करने लगे।

८. रावण की लंका थी कहाँ पर ?

पिछले पन्नों के पढ़ने से पाठकों को मालूम हो गया होगा कि लंकेश्वर रावण द्राविड़ था और अयोध्यपति राम आर्य। राम और रावण की लड़ाई आर्यों और द्रविड़ों की लड़ाई थी। रावण शाक्त व शैवी था, राम स्वयं उपेन्द्र विष्णु के अवतार। राम-तन-धारी विष्णु ने शिव का धनुष तोड़कर पहले जनक द्वारा पालित एक अज्ञात-कन्या सीता के साथ ब्याह किया फिर आर्य-संस्कृति के विरोधी एक महापंडित शैवी राजा रावण को वंश-सहित मारकर दक्षिण पर विजय प्राप्त की।

यह इतिहास-सिद्ध बात है कि उत्तर भारत में आर्यों के जम जाने पर मूल-निवासी द्रविड़ दक्षिण चले गये थे, और दक्षिण में, आर्य-प्रभाव जमाने के लिए आर्य-ऋषियों ने वहाँ अपने आश्रम बना लिये थे। ये आश्रम आर्य-प्रसार की अगली चौकियाँ थे। जब आर्य-ऋषि यज्ञादि द्वारा वैदिक धर्म का प्रचार करते थे, तो रावण के साथी उनके यज्ञों को भंग करते और आर्य-मिशनरियों को मारते थे। आर्य-ऋषि अत्यंत चिंतित थे। उन्होंने से इन विरोधियों के दमन और विनाश के लिए विष्णु से प्रार्थना की और विष्णु ने आश्वासन दिया कि राजा के घर में अवतरित होकर इनका विनाश करेंगे। अतः रामचन्द्रजी जब दक्षिण में ऋषियों के आश्रमों में पहुँचे, तो उन्होंने उनका हार्दिक स्वागत किया और वहाँ की सारी परिस्थिति उन्हें बता दी, और ऋषियों के बताये रास्ते से चलकर रामजी को अपने काम में विजय प्राप्त हुई।

यहाँ तक तो राम-रावण की कथा हुई। इस से यह पता न चला कि जिस लंका को रावण के ससुर मेरठ-निवासी मय-दानव ने बनाया, जिस लंका को बंदर हनुमान् ने फूँका और जिस लंका को राम ने फतेह किया वह रावण की लंका कहाँ थी? वाल्मीकि ने लंका की स्थिति का निर्देश नहीं किया और न किसी अन्य रामायण में ही उसकी स्थिति का स्पष्ट संकेत है। घटनाओं और संबंधों का हिसाब लगाने से यही जवाब आता है कि लंका पंचवटी के ही आस-पास कहीं होना चाहिए।

वहाँ से सैकड़ों-सैकड़ों कोस दूर सिंहल द्वीप में लंका यदि मानी जाय तो हिसाब नहीं बैठता। सुदूर सिंहल द्वीप को रावण की लंका निर्दिष्ट करने का कारण यही समझा जाता है कि बौद्ध-धर्म के प्रति जनता में घृणा का प्रचार हो। क्योंकि सिंहल स्थविरवादी (हीनयानी) बौद्धों का सबसे बड़ा केन्द्र था, अतः सिंहल के प्रति जनता की बड़ी श्रद्धा थी। उस श्रद्धा को घृणा के रूप में परिणत करना अभीष्ट था। इसीलिए रावण के चरित्र को अत्यंत काला चित्रित किया गया और सिंहल को राक्षसों का गढ़ लंका ठहराया गया। किंतु सिंहल का इतिहास इस प्रकार है—

सिंहल भारत के बाहर समुद्र के भीतर एक द्वीप है। यह २७० मील लंबा और १४० मील चौड़ा है और इसका क्षेत्रफल ३२ हज़ार वर्ग-मील है। आजकल इसकी आबादी ६० लाख है। इसमें कई बड़े-बड़े पहाड़ हैं, जिनकी ऊँचाई समुद्र-तल से ६ और ७॥ हजार फीट है। इसका पुराना नाम ताम्रपर्णी है। भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण ४८३ ई० पू० में हुआ। उसी साल गुजरात का राजकुमार विजयसिंह ताम्रपर्णी गया और उसी के नाम पर ताम्रपर्णी का नाम सिंहल हो गया। सन् ईसवी से ढाई सौ वर्ष पूर्व अशोक-पुत्र महेंद्र और पुत्री संघमित्रा प्रव्रजित हो धर्म प्रचारार्थ सिंहल गये और वहीं रम गये। इस कारण सिंहल बौद्ध-धर्म का केंद्र बन गया, और उसकी प्रसिद्धि हो जाने के बहुत दिन बाद रामायण की कथा के अनुसार 'लंका' नाम उससे चिपका दिया गया और वहाँ के नूरर-एलिया पहाड़ के पास एक स्थान का नाम 'सीता-एलिया' रखकर उसे 'अशोकवाटिका' प्रसिद्ध किया गया और कहा गया रावण ने इसी स्थान पर सीता को क़ैद कर रखा था। इसके सिवा सिंहल-निवासी रावण के संबंध में और कुछ नहीं जानते। अयोध्या में जिस तरह रामचंद्रजी का नाम है, उसका लाखवाँ हिस्सा भी लंका में रावण का नाम नहीं है। सिंहल का 'लंका' नाम और दक्षिण का रामेश्वरम् मंदिर दोनों बहुत आधुनिक हैं।

सिंहल को मुसलमान लोग भी अपना पवित्र तीर्थ मानते हैं। उनका विश्वास है कि हजरत आदम बेहिश्त से सिंहल में ही उतरे थे और वह

मोर भी उनके साथ वहीं उतरा था जो उन्हें बहकाकर लाया था। जिस पहाड़ पर हजरत आदम उतरे थे, उसका नाम 'आदम की घाटी' है। मुसलमान वहाँ ज़ियारत करने जाते हैं।

सिंहल में वैसे तो ४५०० बौद्ध-बिहार हैं जो इस समय प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षालय के रूप में शिक्षा-प्रचार कर रहे हैं, परंतु दो बहुत बड़े विहार हैं जिनमें बौद्ध-त्रिपिटक, बौद्ध-दर्शन और बौद्ध-धर्म की शिक्षा दी जाती है और समस्त संसार के हजारों शिक्षार्थी शिक्षा-लाभ करते हैं। एक का नाम 'विद्योदय-विद्यालय' है, दूसरे का 'विद्यालंकार-विद्यालय'। सिंहल में निरक्षर एक प्रतिशत भी नहीं हैं। ५ दैनिक पत्र सिंहली और अंग्रेजी में निकलते हैं, जिनके सर्कुलेशन एक-एक लाख तक हैं।

लंका में कई जातियों के लोग रहते हैं जिनमें सबसे अधिक सिंहली हैं। बौद्ध और ईसाई दो प्रमुख धर्म हैं, परन्तु आजकल ईसाई तेजी से बौद्ध हो रहे हैं। सिंहल में जातिभेद नहीं है, धर्म केवल व्यक्तिगत विश्वास की चीज है। पति बौद्ध है, तो पत्नी ईसाई; माँ ईसाई है तो बेटा बौद्ध। खान-पान और ब्याह-शादी में कोई भेद नहीं। सामाजिक बुराइयाँ भी बहुत कम हैं। लड़कियों के ब्याह १८-२० वर्ष में और लड़कों के २८-३० वर्ष में होते हैं। दहेज-प्रथा बिलकुल नहीं, और इच्छा होने पर तलाक भी हो सकता है। वेश्या-वृत्ति कानूनन् बंद है। मादक वस्तुओं का पूर्ण बहिष्कार है। कहीं-कहीं जनता की इच्छा से शराब बिक सकती है। नारियल, रबर और चाय के बगीचे वहाँ का प्रमुख पेशा है, जिनमें काम करनेवाले लाखों कुली प्रायः भारतीय तामिल हैं। जो विदेशी होने के कारण अब वहाँ से निकाले भी जा रहे हैं।

इस प्रकार सिंहल द्वीप एक सुधरा हुआ, सुखी और प्रगतिशील देश है तथा बौद्ध-संस्कृति का केंद्र-स्थल है। लेकिन हमारे यहाँ कहा जाता है "लंका निश्चर-निकर निवासा, उहाँ कहाँ सज्जन कर वासा।" वस्तुतः लंका में एक भी राक्षस नहीं जो नर-अहार करता और मद्य पीता हो, न कोई वहाँ रावण को जानता ही है। तब प्रश्न होता है कि आखिर रावण की लंका थी कहाँ, जहाँ बैठकर वह पंचवटी और दंडकवन का शासन

करता था, जहाँ से हिमालय के ऊपर देवलोक में अभियान करके वैदिक देवों को मारता तथा उनकी बहुमूल्य संपत्ति और सुन्दरी कन्याओं का अपहरण करता था? और जहाँ से उसने कार्तवीर्य अर्जुन की माहिष्मती तथा दशरथ की अयोध्या पर चढ़ाई की थी?

इस प्रश्न का उत्तर इन्दौर के प्रसिद्ध विद्वान सरदार कीबे महोदय ने अपने एक अनुसंधान-पूर्ण लेख में दिया है। सरदार कीबे महोदय के उस लेख का संकलन विद्वत्प्रवर श्रीसद्गुरुशरण अवस्थी एम० ए० ने अपनी 'गद्य-प्रकाश' पुस्तक में किया है। इस निबंध के प्रमुख अंश इस प्रकार हैं—

"रावण की लंका के विषय में बहुत भ्रम फैला हुआ है।....जब से भारतीय विद्वत्परिषद् का जन्म हुआ है, तब से ज़ोर दिया जा रहा है कि रावण की लंका मध्यभारत में अमरकंटक पर्वत के ऊपर थी। इस मंतव्य के पक्ष और विपक्ष में अनेक हिंदी और अँगरेज़ी पत्र-पत्रिकाओं में कई लेख लिखे जा चुके हैं और विद्वत्-परिषद् की बैठकों में वाद-विवाद भी हो चुका है। परंतु अभी तक कोई ऐसा तर्क उपस्थित नहीं हुआ जो इस विचार को निर्मूल सिद्ध कर सके।" (पृ० १६७)

"वाल्मीकीय रामायण की कथा से स्पष्ट देख पड़ता है कि लंका अयोध्या के दक्षिण ओर थी। राम को जब वनवास की आज्ञा हुई तो वे घर से दक्षिण की ओर जाकर चित्रकूट में बहुत दिनों तक रहे, वहाँ से चलकर दंडकारण्य गये, और उसी जंगल में रावण सीता को हरकर लंका द्वीप को ले गया। 'द्वीप' का अर्थ सागर के बीच का टुकड़ा लेने से सैकड़ों मील के विस्तारवाले समस्त द्रविड़-देश को बिना पार किये उसकी स्थिति बैठाने में सुभीता नहीं बैठता।... ....जाँच से तो अभी तक यही प्रतीत होता है कि रावणीय लंका का मध्य भारत के अमरकंटक में होने का दावा दृढ़तर है।" (पृ० १६८)

"बहुतेरे लोगों की यह समझ में नहीं आता कि लंका पहाड़ के ऊपर कैसे हो सकती है? अमरकंटक के पास सागर कहाँ है, जिसे पार करके हनुमान लंका को गये थे? राम ने सागर में जो सेतु बाँधा था, वह कहाँ पर है? ....वस्तुतः 'दंडक' शब्द शाबरी-भाषा का है, जिसक

अर्थ 'जलमय' या 'जल-साविता' होता है।....अमरकंटक की तली में आज तक एक बड़ा भारी दलदल है, जिसको कोई पार नहीं कर सकता। ....इस पर से सरलता से अनुमान किया जा सकता है कि राम के समय में वहाँ पानी का कितना बड़ा संग्रह रहा होगा। उसको यदि सागर की उपमा दी गई हो, तो कौन-सी असंभव बात है? आजकल के लोग भी अमरकंटक की चोटी पर चढ़कर नीचे की ओर जब दृष्टि-पात करते हैं, तो सोनभद्र के जल पर नज़र पड़ते ही सहसा उनके मुख से निकल पड़ता है—यह कौन समुद्र भरा है। सोनभद्र इसी अमरकंटक से निकला है, वहीं से नर्मदा का भी निकास है।" (पृ० १६६)

"अमरकंटक के किनारे का जलाशय ही सागर या महासागर था, जिसको तैरकर (या काव्य की भाषा में कूदकर) हनुमान् लंकापुरी को पहुँच गये थे और अंत में राम ने इसी पर सेतु बाँधकर अपने वानरों की सेना को रावण की राजधानी में प्रवेश कराया था। इस स्थल में शिव के मंदिरों की भी बहुतायत है।" (पृ० २००)

"मानव-शास्त्र-वेत्ताओं का मत है कि आर्य लोगों ने वायव्य की ओर से इस देश में प्रवेश किया और ज्यों-ज्यों वे आगे बढ़ते गये, त्यों-त्यों वे यहाँ के मूल-निवासियों को हटाते गये। जान पड़ता है कि रामचंद्र के होने तक आर्यों ने विंध्य के उत्तरीय प्रांतों तक अपना अधिकार जमा लिया था। इसके पश्चात् उन्होंने आगे बढ़ने का विचार किया और मार्ग खोलने के लिए विंध्य के पार निविड़ जंगलों में ऋषि-मुनियों को मिशनरियों की भाँति भेजना आरंभ किया, परंतु मूल-निवासियों ने इसको अपने अधिकार पर आक्रमण समझा, इसलिए वे उनको अनेक प्रकार के कष्ट पहुँचाने लगे और बहुतेरों को उन्होंने मार भी डाला। जब रामचन्द्र ने दंडकारण्य में प्रवेश किया, तो उनको अनेक ऋषियों की हड्डियों के ढेर दिखलाये गये और सुझाया गया कि यह सब जंगली लोगों का काम था जिनको कि वे लोग राक्षस कहते थे। इसमें उनके राजा की भी सम्मति थी। उस समय यह राजा रावण था और अपने राज्य के पर्वतों की सबसे ऊँची चोटी पर रहता था। 'लंका' शब्द गोंड-भाषा का है,

जिसका अर्थ है टीला। इस प्रांत में आज तक गोंडों की बहुतायत है, जिनको रावण से संबंध अभी तक विस्मृत नहीं हुआ। गोंड आज बिलकुल अशिक्षित प्रायः जानवरों की समता की जाति है। इसलिए उनको यह नहीं मालूम कि रावण कौन था। परंतु वंश-परंपरा की रूढ़ि द्वारा इतना जानते हैं कि वे रावण-वंशी हैं। १८९१ ई० की जन-संख्या के समय प्रत्येक जाति की आंतरिक पंक्तियों के भी नाम लिखे गये थे, उस समय लाखों गोंडों ने अपने को रावण-वंशी लिखाया था। आज भी कोई जाकर पूछे, तो यही बात बताते हैं।"

"ख्रीष्टीय १३ वीं १४ वीं शताब्दी में गोंड लोग मौक़ा पाकर मध्यप्रदेश के राजा बन बैठे थे। इनका आधिपत्य तीन-चार सौ वर्षों तक स्थिर रहा। इस घराने में सबसे प्रतापी राजा संग्रामसिंह हुआ, जिसके सोने के सिक्कों में उसके नाम के आगे पौलस्त्य-वंश खुदा मिलता है। यद्यपि संग्रामसिंह ब्राह्मण मंत्रियों और कार्यकर्ताओं से घिरा हुआ था जिन्होंने उसे क्षत्रियों में शामिल कर लिया था, तथापि उसने अपने यथार्थ-वंश के नायक का तिरस्कार नहीं किया और अपनी वंश-सूचक पदवी को स्थिर रखा।"

"इतनी बात जानकर चित्रकूट छोड़कर राम की वनचर्या पर मनन करने की आवश्यकता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि सीता का हरण अमरकंटक के आस-पास के प्रांत में हुआ और उसी के निकट अन्त में राम-रावण का युद्ध हुआ। राम ने गोंडों के विपक्षी उराँवों और शबरों को अपने पक्ष में कर लिया और उनकी सहायता से विजय पाई। यही उराँव प्राचीन काल में वानर कहलाते थे। शबरों की कदाचित् ऋक्ष संज्ञा रही हो। ये दोनो अभी अमरकंटक के पास पाये जाते हैं। शबरों की संख्या अब (सन् १९११) में प्रायः छः लाख और उराँवों की नौ लाख है।" (पृ० २०२-२०३)

"चित्रकूट छोड़ने पर जितने स्थलों के नाम बताये गये हैं, उन सबकी स्थिति निश्चयपूर्वक स्थिर नहीं हुई है, तथापि रामायण में जो दूरी का हिसाब बताया गया है, उससे प्रकट होता है कि चित्रकूट से सुतीक्ष्ण का

आश्रम प्रायः ३० मील था और यहाँ से पंचवटी लगभग ४८ मील । इस प्रकार चित्रकूट से किष्किंधा १०० मील से अधिक दूरी पर न थी ।" (२०५)

"सुतीक्ष्ण के आश्रम में पहुँचकर राम वहाँ कुछ दिन रहे,....पश्चात् वहाँ से चार योजन पर अगस्त्य के भाई के आश्रम में गये । फिर वहाँ से अनतिदूर अगस्त्य के आश्रम को जाकर उन्होंने अपने रहने योग्य स्थान का पता लगाया । अगस्त्य ने अपने आश्रम से दो योजन पर गोदावरी नदी के तट पर पंचवटी स्थान बताया । वहीं पर कुटी बनाकर राम की पार्टी रहने लगी । यहीं से सीताजी को रावण हर ले गया । पंचवटी से थोड़ी दूर पर जटायु ने रावण को रोका, परंतु उसने गृद्ध के पंख काट डाले और पंपा-सरोवर होते हुए सागर को लाँघकर वह ठेठ लंका जा पहुँचा ।"

"राम और लक्ष्मण जब सीता की खोज में निकले, तो तीन कोस की दूरी पर क्रौंचारण्य में पहुँचे । उसे पारकर पूर्व की ओर मुड़ने पर एक घोर वन मिला । फिर वे एक भयंकर खोह में होकर महारण्य में घुसे, जहाँ कबंध राक्षस मिला । उसने बताया कि यहाँ से दक्षिण की ओर पंपा-सरोवर के तट पर ऋष्यमूक पर्वत है, उस पर सुग्रीव नामक वंदर रहता है । उससे पूछने पर सीताजी का पता चल जायगा । तब वे (राम-लक्ष्मण) पंपा की ओर चले । वहाँ पर शबरी मिली । यह स्थान मतंग ऋषि का आश्रम था । उसके पूर्व में ऋष्यमूक पर्वत था, जहाँ पर सुग्रीव से भेंट हुई । इसके निकट ही किष्किंधा थी, जहाँ सुग्रीव का भाई बालि रहता था ।" (पृ० २०५)

"इन्हीं स्थलों के आस-पास उराँव—वनरावँ—वानर जाति की बहुलता है जिसके मुखिया सुग्रीव थे ।.... ...इस प्रकार चित्रकूट और अमरकंटक के बीच में सभी बातें ऐसी जम जाती हैं कि राम की नरलीला में कोई बाधा नहीं आती और उन जातियों का भी पता लग जाता है, जो राम और रावण की सहायक थीं ।" (पृ० २०५)

"द्राविड़ी जंगली लोग नदी को 'गोदारि' कहते हैं ।........इसलिए 'गोदारि' का अर्थ हुआ 'नदी' जिसको आर्यों ने अपने प्रकृति-प्रत्यय लड़ाकर संस्कृत-भाषा में 'गोदावरी' कर डाला ।" (पृ० २०६)

"पौराणिक और स्थानीय स्रोत के आधार से प्रतीत होता है कि राम और रावण का युद्ध अमरकंटक की चोटी पर हुआ। एक ओर गोंड-सेना और दूसरी ओर उराँव और शबरों की मुठभेड़ हुई। अंत में राम की जीत का डंका बजा, जिसके द्वारा उभय कोशलों मे रघुवंशी राज्य स्थिर हो गया।" (पृ० २०७)

❀ ❀ ❀ ❀

उपर्युक्त तर्क-प्रमाण-पूर्ण उद्धरणों से यह सिद्ध हो जाता है कि रावण, द्रविड़ कहिए या गोंड, भारत का आदि-निवासी था और राम-रावण-युद्ध वस्तुत: आर्य और आदिवासी युद्ध था जिसमें आर्यों की विजय हुई और जिन दूसरे उराँव, शबर आदि आदि-निवासियों ने अपने दूसरे देश-बंधुओं के विरुद्ध आर्य-रामचंद्र की युद्ध में सहायता की उन्हें आर्य-कवियों ने 'बंदर' और 'भालू' कहकर उनकी आर्य-भक्ति एवं आर्य-सेवा की सराहना की !

९. रावण की महानता और पांडित्य

शत्रु-पक्ष का ग्रन्थ होते हुए भी वाल्मीकि में स्थान-स्थान पर रावण की महानता का वर्णन मिलता है। रावण के शौर्य का बखान करते हुए वाल्मीकि लिखते हैं—"रावण को आते देखकर सूर्य अपनी उष्णता कम कर देता, पवन अपनी गति मंद कर देता, समुद्र अपने गर्जन-घोष को रोक देता, नदियाँ अपना वेग त्याग देतीं और पर्वत अपनी कठोरता भूल जाते।" रावण के मरने पर वाल्मीकि ने राम के मुख से उसे 'महात्मा' कहला दिया। यथा—"महात्मा बलसम्पन्नो रावणो लोकरावणः।"

रावण केवल शूरवीर ही नहीं एक अच्छा राजनीतिज्ञ भी था। देवों, गंधर्वों, नागों और आर्यों पर उसने जो विजय पर विजय पाई, उसमें उसके बाहुबल के साथ ही उसकी सुसंगठित शासन-व्यवस्था भी सहायक थी। रावण अपने साम्राज्य का अधिनायक था किन्तु उसका एक मंत्रि-मंडल और विधान-सभा भी थी, जिनसे वह बराबर परामर्श करता रहता था। सीता का हरण और हनुमान की दुम काटे जाने का दंड उसने अपनी परिषद् के परामर्श से दिया था।

रावण स्त्री-लम्पट नहीं था। वह शूरवीर, सुन्दर, सुवर्ण रत्न और अपार ऐश्वर्य से सम्पन्न था, अतः राजर्षियों, ब्राह्मणों, देवों और गंधर्वों की सुन्दरी कन्याएँ कामासक्त हो स्वयं उसकी स्त्रियाँ बन जाती थीं। वाल्मीकि ने लिखा है, रावण के अन्तःपुर में ऐसी कोई रमणी नहीं थी जो बलात् लाई गई हो। रावण अनिच्छुक स्त्री से रति नहीं करता था, अनुरागिणी से ही प्रेम करता था। अनिच्छुक वनिता-विहार कामशास्त्र में निषिद्ध है। उसमें कोई आनंद नहीं।

रावण के पांडित्य और महानता की दो और बातें लोकप्रसिद्ध हैं : एक यह कि रावण अपने समय का महान् ज्योतिर्विद् भी था। राजा दशरथ द्वारा रामचंद्र की जन्म-कुन्डली बनाने के लिए वह बुलाया गया था और उसने जो भविष्य-फल कहा, ठीक वही बातें राम के जीवन में संघटित हुईं; दूसरी यह कि सेतु बाँधने के पूर्व जब शिल्पी नल-नील के अनुरोध से श्रीरामचन्द्रजी शिवलिंग की विधिवत् स्थापना के लिए प्रस्तुत हुए तो प्रतिष्ठा के लिए तत्कालीन महान् शैवाचार्य रावण को बुलाया गया। रावण आया और उसने राम से पूछा—"कौन प्रतिष्ठा करेगा?" राम ने कहा—"दशरथ-पुत्र राम।" रावण ने पूछा—"तुम सपत्नीक हो या विपत्नीक?" और 'सपत्नीक' कहने पर रावण ने कहा—"अपनी पत्नी को वामांग में बिठाओ।" राम ने कहा—"वह तो तुम्हारे यहाँ क़ैद है। उसी के छुड़ाने के लिए तो यह आयोजन हो रहा है।" रावण ने कहा—"ओह! सीता तुम्हारी ही पत्नी है। अच्छा शिवपूजा के लिए मैं उसे बुलाये देता हूँ।" यह कहकर वह लंका से सीता को ले आया, और राम के वामांग में बिठाकर विधिवत् शिवार्चन करा दिया, और सीता को पुनः अपने साथ लंका वापस ले गया।

संस्कृत-साहित्य में रावण-कृत अनेक ग्रन्थ प्रसिद्ध हैं। रावण का वेदभाष्य तो अप्राप्त है, केवल उसका जिक्र अन्य भाष्यों में है, जिससे अनुमान होता है कि परवर्ती भाष्यकारों ने रावण-भाष्य से सहारा लेकर अपने भाष्य रचे और फिर मूल भाष्य को नष्ट करा दिया ताकि साहित्य-चोरी पकड़ी न जाय। रावण कृष्ण यजुर्वेद का मंत्रद्रष्टा भी बताया

जाता है। इसमें १८ हजार मंत्र हैं। कहते हैं, वेदों के सस्वर पाठ क की प्रणाली का आविष्कार रावण ने ही किया। रावण जब सीता समीप जाता, तो वेद-मंत्रों का सस्वर संगायन करता हुआ जाता थ वह संगीत-प्रेमी ही नहीं, संगीत-मर्मज्ञ था। उसकी रानियाँ भी मे मृदंग, पखावज, वीणा आदि के बजाने में निपुण थीं। संगीत-शा पर भी रावण-रचित "रावणीयम्" नामक एक ग्रन्थ है। इसके सि वैशेषिक दर्शन पर रावण का भाष्य है। अर्क प्रकाश नामक ग्रन्थ राव कृत है। प्रसिद्ध शिवतांडव-स्तोत्र रावण-कृत है, और रावण-कृत उड्डी तंत्र प्रसिद्ध है। रावण-पुत्र मेघनाद-कृत उड्डीस-तंत्र भी प्रसिद्ध है संस्कृत-साहित्य में रावण की ये अमर कीर्तियाँ हैं।

यहाँ यह कहना अप्रासंगिक न होगा कि वाम-पंथ और तंत्र-ग्रन्थ की आर्यसमाजी पंडितों ने बड़ी निंदा की है। किंतु गहराई में घुसक यदि देखा जाय तो भारत का समस्त तत्वज्ञान तंत्र-ग्रन्थों में निहित अ सुरक्षित पाया जायगा। तंत्र का अर्थ पंडितों ने 'सूत' किया है, अ "सूत्रे मणिगणा इव" भारत का समस्त ज्ञान मणियों की तरह सू में पिरोया हुआ तंत्र-आगम में विद्यमान है। आर्यसमाजी पंडि पंचमकारी कहकर वाम-पंथी तांत्रिकों की जो निंदा करते हैं, वह समी चीन नहीं प्रतीत होती; तंत्र-शास्त्र का उद्देश्य मद्य-मांस का सेवन नहीं अपितु निषेध है। तांत्रिकों ने मनुष्यों के तीन विभाग किये हैं: पशु वीर और दिव्य। जो अवारित मद्य-मांस का सेवन और मैथुन कर हैं, वे 'पशु' हैं; जो पर्व दिन में देवता को चढ़ाकर प्रसाद-रूप में मद्य मांस सेवन एवं ऋतु-काल-विचार से मैथुन करते हैं, वे 'वीर' है जो ज्ञान को ही मद्य और इन्द्रिय-दमन को ही मांस एवं भावानन्द क ही मैथुन समझते हैं, वे 'दिव्य' हैं। पशु-भाव में आबद्ध मानव क दिव्य-भाव में ले आना ही वाम-पंथ और तंत्र-शास्त्र का उद्देश्य है तांत्रिकों में जातिभेद और मानव-घृणा नहीं होती, मैं-मेरा और तैं-ते के भाव का भी वहाँ ध्वंसीकरण है। तंत्र का आविर्भाव बौद्धों महायान के बाद वज्रयानियों द्वारा हुआ, ऐसा माना जाता है।

किंतु द्रविड़ कजगम के वयोवृद्ध नेता पेरियार रामस्वामी का कहना
क रावण अहिंसा-धर्म-परायण बौद्ध था—वह पंचमकारी नहीं,
शील का उपासक था। उसने मृत्युशय्या पर पड़े होने की हालत में
ता रामचन्द्र को दया-पूर्ण भाव से जनता का शासन करने का
देश दिया था। वह राजा होने की हैसियत से याज्ञिक ब्राह्मणों को
ल इसलिए दण्ड देता था क्योंकि वे लोग यज्ञों में निरीह पशुओं
हनन करते और सोम-सुरा का पान करते थे। वैदिक ऋषि जब
रण और उसके साथियों के कारण आज़ादी से अपना यज्ञ-कर्म नहीं
ने पाते थे, तो उन्हें राक्षस और दैत्य कहकर उनसे द्वेष करते थे।

असहिष्णुता और भिन्न-धर्मियों से विद्वेष वैदिक धर्मियों का स्वाभा-
क लक्षण है। बौद्धों का उच्छेद करने में उन्होंने जो किया, ईसाई
र मुसलमानों के विरुद्ध जितनी घृणा का उन्होंने प्रचार किया,
ख, कबीर, नानक, दादू, रैदास आदि सन्तों के साथ जितना
द्रोह उन्होंने किया और बाबा साहेब अंबेदकर एवं उनके अनुयायियों
प्रति जितना घृवा-पूर्ण विद्वेष का भाव उनमें है, वह सर्वविदित है,
-एक व्यक्ति उसे जानता और समझता है। उनकी मानवता को
ई दोष नहीं देता, वैयक्तिक रूप से उनमें अनेक सज्जन भी होते हैं।
-द्वेष और मानव-घृणा उन्हें उनकी संस्कृति और उनका धर्म सिखाता
विद्वेष उनके संध्या-वंदन का प्रमुख अंग है। वे नित्य प्रातः-सायं
ने छओं ओर जल के छींटे मारते हुए मंत्र पढ़ते हैं—

"योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः तं वो जम्भे दध्मः।"

अर्थ—जिनसे हम द्वेष करते हैं और जिनको हमसे द्वेष है, उन्हें, हे
शाओं के स्वामी ! तुम अपने विकराल जम्भ (जबड़े) में
कर खा जाओ।

इस प्रार्थना के लिए क्या कहा जाय। सिवाय इसके कि धन्य
दिक धर्म, धन्य ब्राह्मणी संस्कृति और धन्य आपकी रामलीला !!

॥ इति ॥

बहुजन-कल्याण-माला की पुस्तकें

१. भारत के मूल-निवासी और आर्य, तीसरा संस्करण .... (छपने में)
२. सृष्टि और मानव समाज का विकास, तीसरा संस्करण (छपने में)
३. भारत के आदि-निवासियों की सभ्यता, तीसरा संस्करण १० आना
४. राम-राज्य-न्याय नाटक (शंबूक मुनि बलिदान) .... ४ ,,
५. आदिवंश का डंका (गायन) .... २ ,,
६. बहुजन-हुंकार (गायन) .... २ ,,
७. शोषित-पुकार (गायन) .... २ ,,
८. हरिजन-गोहार और छूत-छत्तीसी (गायन व कवित्त) .... २ ,,
९. भारतीय चर्मकारों की उत्पत्ति, स्थिति और संख्या .... ६ ,,
१०. संत रैदास साहब, दूसरा संस्करण (छपने में)
११. बाबा साहेब का नागपुर का भाषण .... २० न. पै.
१२. बाबा साहेब का उपदेश और आदेश .... २० ,,
१३. ईश्वर और उसके गुड्डे [एक बुद्धिवादी विचार-धारा] ५० ,,
१४. शिव-महिम्न [गद्य-पद्य-हिन्दी अनुवाद व दीन-विनय] ६ आना
१५. शिव-तत्व-प्रकाश [एक बुद्धिवादी विचार-धारा] .... ५० न. पै.
१६. रावण और उसकी लंका [एक बुद्धिवादी विचार-धारा] ५० ,,
१७. बाबा साहेब का संघर्षमय जीवन-चरित्र .... ५० ,,
१८. सदगुरु कबीर साहिब का मानवसंदेश [छुआछूत-विचार] ५० ,,

बुद्ध-विहार, लखनऊ के प्रकाशन

१. भगवान् गौतम बुद्ध (भदंत बोधानंद महास्थविर) .... १॥)
२. बौद्ध-चर्या-पद्धति (,, ,,) .... १॥।)
३. महामानव बुद्ध (राहुल सांकृत्यायन) .... २॥)
४. धम्मपद (सानुवाद) (,,) .... १॥)
५. तुलसी के तीन पात (भदंत आनंद कौसल्यायन) .... १)
६. संयोजन (दस भव-बंधन) (,,) .... ।=)

पता—हिंदू-समाज-सुधार कार्यालय, सआदतगंज, लखनऊ-२३